CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करुणामूर्ति बुद्ध

5-4

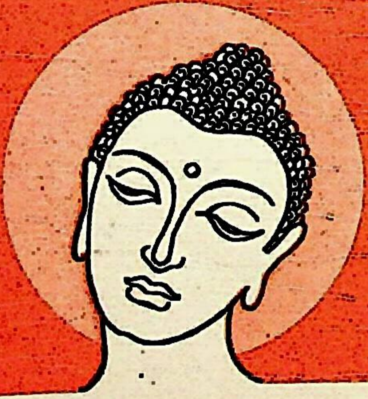

गुणवंत शाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करुणामूर्ति बुद्ध

लेखक
डॉ० गुणवंत शाह

अनुवादक
डॉ० भानुशंकर मेहता

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KARUNAMURTI BUDDHA

by

Gunvant Shah

1987

प्रथम संस्करण : १९८७ ई०

मूल्य : पच्चीस रुपये

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी

मुद्रक

शीला प्रिण्टर्स, लहरतारा, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री श्रीकांत आप्टे जी को

सादर

—गुणवंत शाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्य दिन में प्रकाशित होता है,
चंद्र रात में उजेला फैलाता है,
योद्धा जिरह बख्तर में शोभा पाते हैं,
ब्राह्मण ध्यान में देदीप्यमान होते हैं,
लेकिन
जो जाग चुका है, वह तो
रात और दिन
तेज से देदीप्यमान बना रहता है।

—धम्मपद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रम

स्वागत	रोहित मेहता	७
भूमिका		१
करुणामूर्ति बुद्ध		३
परिशिष्ट १	जैन विचारधारा	५७
परिशिष्ट २	जैन कथाएँ	७१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वागत

भगवान बुद्ध का व्यक्तित्व अपूर्व, अद्वितीय और अत्यन्त प्रभावशाली था। ऐसा व्यक्तित्व मानव इतिहास में दूसरा नहीं मिलता। राम और कृष्ण अवतारी पुरुष थे—बुद्ध अवतारी बने अपनी कठोर साधना से। इसी से तो विश्व के अनेक चिन्तकों ने बुद्ध को मानव जाति का प्रथम पुष्प-कहकर वर्णित किया है।

धर्म तो किसी एक व्यक्ति की अनुभूति और उसमें से प्रगट होती अभिव्यक्ति पर आधारित है। अनुभूति में से उत्पन्न अभिव्यक्ति हमेशा स्वाभाविक और सरल होती है। जहाँ अनुभूति अदृश्य होती है वहाँ अभिव्यक्ति की भाषा कृत्रिम और अति अलंकारिक बन जाती है। बुद्ध का धम्मपद और ईसा का 'सर्मन आन द माउण्ट' अत्यन्त सरल भाषा में अभिव्यक्त हुए हैं। उपनिषदों की भाषा देखें तो वह बहुत ही सटीक और सरल है। धर्म की पवित्रता अनुभूति और अभिव्यक्ति के संगम स्थल पर ही रहती है। जहाँ यह संगम नहीं है वहाँ धर्म के अनेक दूषण दृष्टिगोचर होते हैं।

बुद्ध के आगमन के समय हिन्दू धर्म में अनेक दूषण प्रविष्ट हो चुके थे। रूढ़ियाँ, कर्मकाण्ड, गुरु-परम्परा की दीवारें, अंध-श्रद्धा और बद्ध मतों में धर्म बन्दी हो गया था। धर्म के नाम पर, यज्ञों की आड़ में हिंसा और क्रूरता का बोलबाला था। बुद्ध ने आकर धर्म के नाम पर चलते इस उपद्रव के विरुद्ध जबरदस्त आवाज उठाई। ब्राह्मण धर्म की अधोगति के विरुद्ध अपनी बुलन्द आवाज पेश की। आवाज इतनी ज्यादा बुलन्द थी कि ब्राह्मण धर्म अपने स्वरक्षण में जुट गया। बुद्ध की आवाज बुलंद थी क्योंकि वह अनुभूति की आवाज थी। ब्राह्मण धर्म को पीछे हटना पड़ा। भारतवर्ष के धार्मिक इतिहास का यह एक ज्वलन्त अध्याय है। सदियों पुरानी प्रबल धर्म परम्परा को एक व्यक्ति ललकार सके और उस ललकार से धर्म की नींव को हिला सके ऐसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह अद्भुत घटना मानव इतिहास में घटित हुई। धर्म को इस प्रकार ललकारने वाला व्यक्ति था–बुद्ध। यह ललकार हिन्दू धर्म को इतनी मँहगी पड़ी कि हिन्दू धर्म को बचाने के लिये शंकराचार्य को आना पड़ा। श्री शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म का रक्षण तो किया पर बुद्ध विचार धारा के बहुत से अंशों का समावेश करके; इसी से तो शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बुद्ध' कहा जाता है। शंकराचार्य की माया और सन्यास का उपनिषद् की विचार धारा के साथ तालमेल नहीं बैठता। उपनिषद् ने तो आनन्द ब्रह्म की बात की है। बुद्ध ने संसार की अनित्यता का उपदेश दिया और उसमें से संयास आध्यात्मिक जीवन का ध्येय बना। शंकराचार्य ने यह धारा न अपनायी होती तो हिन्दू धर्म का बचना मुश्किल था। ऐसा था बुद्ध का प्रबल प्रभाव।

परन्तु जैसा अधिकतर धर्मों का समय के प्रवाह में अधःपतन होता है वैसा ही बुद्ध धर्म का भी हुआ। जहाँ भी अभिव्यक्ति और अनुभूति का विच्छेद होता है वहाँ ऐसा ही घटित होगा। अनुभूति ही धर्म को जीवित रख सकती है। जहाँ अनुभूति नहीं है वहाँ अभिव्यक्ति प्राणविहीन खोखा बन जाती है। बुद्ध धर्म में एक प्रार्थना सभी लोग करते हैं :—

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि।

यह प्रार्थना कितनी निर्जीव बन गयी है इसका प्रमाण देखें तो प्रतीत होगा कि आज बुद्ध को और धम्म को लोग भूल गये हैं और संघ ही प्रधान पद पर है। संघ ही बुद्ध धर्म बन गया है। सभी धर्मों की यही स्थिति हुई है। जहाँ संघ-संस्था सर्वोपरि बन जाय वहाँ धर्म की शिक्षा और धर्म का प्राण भुला दिया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व मैं और मेरी पत्नी श्रीलंका के प्रख्यात बुद्धमन्दिर कैंडी में गये तब वहाँ के बड़े गुरु ने हमें अतिथि विशेष का सम्मान प्रदान करके बैठाया और कहा कि "हम बहुत कम लोगो को जो दिखाते हैं वह आपको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखायेंगे।" ऐसा कहकर उन्होंने हमें बुद्ध के आभूषण—कीमती आभूषण दिखाये। जिन बुद्ध ने सभी आभूषण त्याग दिये थे इस प्रख्यात मन्दिर में, उनके आभूषण अतिथि विशेष को दिखाये जायें यह उनका क्रूर उपहास नहीं है ? यह तो एक दृष्टान्त है, पर ऐसे दृष्टान्त बताते हैं कि हम धर्म का प्राण नहीं बल्कि उसका खोखा ही लेकर बैठे हैं। इसी से तो बुद्ध धर्म में 'ज़ेनबुद्धिज्म' नामक शाखा निकली जिसने कहा कि :

हमारा संघ के या धम्म के साथ सम्बन्ध नहीं है, हमारा तो बुद्ध के साथ सम्बन्ध है, अस्तु हमारा किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति के साथ नहीं पर अनुभूति के साथ ही सम्बन्ध है। सभी धर्मों का हार्द उसके रहस्यवाद (मिस्टीसिज्म) में विद्यमान है। हिन्दू धर्म अपने उपनिषदों के रहस्यवाद में है, उसी उसी प्रकार ईसाई धर्म का प्राण ईसाई-रहस्यवाद में समाया है। इस्लाम भी अपने सूफीवाद में और बुद्ध धर्म अपनी ज़ेन विचारधारा में समाया है। जब-जब धर्म ग्लानि होती है तब किसी न किसी प्रकार की रहस्यवादी विचारधारा का जन्म होता है और उसी में धर्मों का पुनर्जन्म होता है। भगवद्गीता के "संभवामि युगे युगे" का यही अर्थ है। जो धर्म नये रहस्यवाद को जन्म दे सकता है वही जीवन्त धर्म है और उसमें जीवन की क्षमता निहित है।

भगवान बुद्ध ने दुःख और संताप से मुक्ति पाने के लिए कौन सा रास्ता बताया ? उन्होंने मध्यम मार्ग बताया। पर मध्यम मार्ग है क्या ? क्या वर्तमान का क्षण थोड़े से भूतकाल के और थोड़े भविष्यकाल के क्षणों का मिश्रण है ? मध्यम मार्ग थोड़ा इसका और थोड़ा उसका ऐसा एकत्र क्रिया दर्शन नहीं है। बुद्ध का मध्यम मार्ग समझना हो तो उपनिषदों द्वारा दर्शाया गया सत्य जानना होगा। उपनिषद मे कहा, "क्षुरस्यधारा निषिता दूरत्यया" मध्यम मार्ग माने छुरे की धार पर चलने का मार्ग। इसी से उपनिषद् ने कहा है कि, "दुर्गम पथस्तत् कवयो वदन्ति" यह मार्ग दुर्गम है। मध्यम मार्ग यदि समाधान का मार्ग हो तो सभी व्यापारी उसका अनुसरण करें। यह जीवन के साथ व्यापार या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सौदा करने का मार्ग नहीं है। गणित में—ज्यामिति में रेखा की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि उसमें लम्बाई है पर चौड़ाई नहीं है अथवा बिन्दु में स्थिति है पर विस्तार नहीं है। ऐसी कोई रेखा हो सकती है ? ऐसा बिन्दु कोई स्थापित कर सकता है ? कभी नहीं, क्योंकि खींची गयी रेखा में लम्बाई के साथ चौड़ाई भी होती है तथा स्थापित किये बिन्दु में स्थिति भी है और विस्तार भी है।

बस यही स्थिति मध्यम मार्ग की है। मध्यम मार्ग का अनुभव किया जा सकता है। उसका वर्णन नहीं हो सकता। मध्यम मार्ग को मनुष्य का मन नहीं समझ सकता। मन तो हरेक वस्तु की व्याख्या करके ही कुछ समझ सकता है। व्याख्या माने द्वंद्व के चौखटे में किसी भी वस्तु को रखना। मध्यम मार्ग द्वंद्व के चौखटे में समझा जा सके ऐसा नहीं है। वह मन की समझ से बाहर है। जब मन का व्यापार बन्द होता है—एक क्षण के लिये ही सही—तब मध्यम मार्ग की प्रतीति होती हैं। शान्त मन ही मध्यम मार्ग की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। बुद्ध का मार्ग मन के मौन में है। इस मौन में हुआ दर्शन ही मध्यम मार्ग है। मध्यम मार्ग में अतिशयता का निषेध है—नकारात्मक और निश्चयात्मक दोनों ही प्रकार की अतिशयता का। पर अतिशयता का माप कौन करेगा ? मन तो राग-द्वेष से मर्यादित है और यह माप कर सके इसमें समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार मन शान्त होता है उस क्षण में ही अतिशयता का माप और उसका निषेध, दोनों एक साथ सम्भव बनते हैं।

बुद्ध को 'करुणामूर्ति' क्यों कहा ? उन्होंने जीवदया का समर्थन और पशु-हिंसा का विरोध किया इसके लिये तो अवश्य ही पर उनकी सच्ची करुणा उनके महाभिनिष्क्रमण में समाहित है। पहले महाभिनिष्क्रमण में उन्होंने गृहत्याग किया और राजमहल छोड़ा, पर दूसरे महाभिनिष्क्रमण में तो उन्होंने निर्वाण सुख भी छोड़ दिया और वह भी निर्वाण की ड्योढ़ी पर खड़े रहकर। उन्होंने कहा कि जब तक एक भी व्यक्ति दुख से पीड़ित रहेगा 'मैं निर्वाण सुख में प्रवेश नहीं करूंगा।' इससे बढ़कर करुणा मानव इतिहास में नहीं मिल सकती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्वाण की ड्योढ़ी से की गयी यह घोषणा, मानव इतिहास में अपूर्व और अनोखी घटना है। सचमुच ही बुद्ध करुणा मूर्ति थे।

मेरे परम मित्र गुणवन्त शाह ने विद्यानगर में दिये गये अपने व्याख्यान पर आधारित यह पुस्तिका प्रकाशित करके बुद्ध धर्म और बुद्ध का स्पष्ट दर्शन लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया है। पुस्तिका में अनेक बातों का मौलिक स्पष्टीकरण हुआ है। आज बुद्ध के इस करुणामूर्ति स्वरूप को और बुद्ध द्वारा प्रबोधित विचारों को समझना बहुत जरूरी है। यदि आज की संस्कृति को बचाना हो तो बुद्ध का मार्ग और उनका व्यक्तित्व समझना अत्यंत आवश्यक है। गुणवन्त भाई ने इस पुस्तिका द्वारा उत्तम कार्य किया है और बड़े सही समय पर किया है। गुणवन्त भाई के इस कार्य का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ।

रोहित मेहता

वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

महाभिनिष्क्रमण की रात
यशोधरा के पार्श्व में सोये
राहुल के कपोल चूमते समय
सिद्धार्थ की आँखों में से
जो अश्रुबिंदु बहे
वे ही तो
प्रबुद्ध करुणा का
महासागर बन गये।

—गुणवंत शाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

डॉ० भोगीलाल सांडेसरा ने जिसे आधुनिक गुजरात के 'अग्रहार'[1] के रूप में स्थापित किया ऐसे विद्यानगर के मानस-पिता स्व० श्री भाई-काका की स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित व्याख्यानमाला में इस वर्ष मुझे आमन्त्रित करने के लिये चारुतर विद्या-मण्डल के अध्यक्ष मुरब्बी श्री एच० एम० पटेल का मैं आभारी हूँ। सरदार वल्लभभाई पटेल तथा विट्ठलभाई पटेल जैसे सपूतों को जन्म देनेवाली इस धरती की सुगन्ध यहाँ भाईकाका नामक एक घटना द्वारा प्रकट हुई। इस सुगन्ध का सगुण सलोना स्मारक है—विद्यानगर !

अपने विषय पर आऊँ उससे पूर्व एक बात स्पष्ट कह देना चाहता हूँ। बुद्ध के विभूतिमत्व पर प्रवचन करने का मेरा अधिकार अत्यन्त मर्यादित है। इसके बावजूद आज के विश्व-सन्दर्भ में बुद्ध के जीवन-दर्शन की सार्थकता बहुत बढ़ रही है इस दृष्टि से मैंने 'करुणामूर्ति बुद्ध' विषय पर बोलने का साहस करने का भार उठाया है। आज की सांसारिक परिस्थिति को समझने की इच्छा करनेवाले विद्यार्थी को शोभा दे इस प्रकार बुद्ध के विषय में मैं आज कितनी ही बातें करने जा रहा हूँ। मेरे विचारों को इस दृष्टि-बिन्दु से श्रवण करने की कृपा करेंगे तो मुझे थोड़ी राहत मिलेगी।

---

१. 'अग्रहार'—अर्थात् ब्राह्मण को राज्य द्वारा दान में प्रदत्त गाँव जहाँ निश्चिततापूर्वक विद्याभ्यास हो सके। अग्रहार का महत्त्व कभी भी राजकीय नहीं था, उसका महत्त्व केवल 'विद्याकीय' था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन द्वारा नियुक्त एक समिति के सदस्य के रूप में मुझे गोरखपुर युनिवर्सिटी के निरीक्षण के लिये जाना पड़ा तब अनायास एक मजेदार मौका हाथ लग गया। जहाँ भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ वह लुम्बिनी वन (नेपाल), जहाँ से राजकुमार सिद्धार्थ ने महाभिनिष्क्रमण किया वह कपिलवस्तु और जहाँ बुद्ध ने महानिर्वाण प्राप्त किया वह कुशीनगर (कुशावती अथवा कुशिनारा), इस प्रकार तीनों तीर्थस्थानों को एक ही पर्यटन में समेट लेना संभव बना। कुशिनारा में रहनेवाले बर्मा के युवा बौद्ध भिक्षु ने मुझे प्रेमपूर्वक थोड़ी सी पाली भाषा की पुस्तकें दीं जिनमें अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी दिये गये थे। इन पुस्तकों में मूल पाली में छब्बीस अध्यायों (वग्ग) में विभाजित धम्मपद के भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा किये गये समश्लोकी अनुवादयुक्त एक पुस्तक भी थी। यह सब ज्यों-ज्यों पढ़ता गया, त्यों-त्यों अधिक प्रभावित होता गया। तीर्थयात्रा मानो विचारयात्रा बन गयी। इसी बीच छठी पञ्चवर्षीय योजना के दरमियान अनुदान सम्बन्धी घटकों को तय करने हेतु बनी एक समिति के सदस्य के रूप में बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी से मिलने का भी अवसर मिला और तब सारनाथ भी हो आया। इस प्रकार महीनों तक बुद्ध की बाबत पढ़ने और विचार करने का मौका मिला। परिणामस्वरूप चेतना में जो कुछ टिक सका वह मैं आपके समक्ष रख देना चाहता हूँ। ■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करुणामूर्ति बुद्ध

आज से २५०० वर्ष पहले

ईसा-पूर्व छठी सदी में दुनिया में अनेक महामानव आये। इस सदी में भारत में बुद्ध और महावीर, चीन में लाओ त्जू और कनफूशियस तथा यूनान में हिरेकलीटस् और पायथागोरस जैसे मानव-रत्न चमके। भारतवर्ष का भूखण्ड मुख्यत: दो महान् परम्पराओं से बँधा है, एक ब्राह्मण-परम्परा और दूसरी श्रमण-परम्परा। ब्राह्मण-परम्परा में वैदिक धर्म का समावेश होता है, जबकि जैन और बौद्धधर्म श्रमण-परम्परा के सुफल माने जा सकते हैं। ब्राह्मण-धर्म यज्ञ-प्रधान था जबकि श्रमण-धर्म त्याग-प्रधान था।

बुद्ध और महावीर के युग में वैदिक संस्कृति को नोना लग गया था। धर्म के नाम पर और यज्ञ के नाम पर लाखों निर्दोष प्राणियों को कत्ल किया जाता था। वर्णाश्रम-प्रथा में आश्रम-परम्परा तो उपकारक थी पर वर्ण-प्रथा में आदमी जैसे आदमी का केवल जन्म के आधार पर वर्गीकरण होता रहा। ऐसे वर्गीकरण के कारण आदमी के व्यक्तित्व का मानो वस्तुकरण (आब्जेक्टिफिकेशन) होने लगा। वर्ण-प्रथा के वर्णभेद में निचले और पिछड़े वर्ग के लोगों का राजकीय, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शोषण होने लगा। अंधश्रद्धा और वहम धर्म के स्थान पर बैठ गये। ऐसे समय बुद्ध और महावीर ने एक विचार-क्रान्ति फैलाई और लोगों को सन्मार्ग पर मोड़ने का काम किया। बुद्ध करुणा-मूर्ति थे और महावीर अहिंसाचार्य थे। दोनों क्षत्रिय थे, राजवंशी थे, क्रान्तदर्शी थे और धर्म तथा ज्ञान को जनसामान्य तक ले जाने को उत्सुक थे। दोनों ने अपने जीवन-काल में निर्वाण प्राप्त करके अपना जीवन-ध्येय प्राप्त किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दादा धर्माधिकारी तो कहते हैं कि 'अपवादरूप हिंसा नियमरूप बन गयी इसलिए बुद्धावतार हुआ ।' जयदेव कवि ने तो कहा कि 'विष्णु ने ही बुद्ध का शरीर धारण कर लिया ।' (केशवधृत बुद्धशरीरः) भूतदया लगातार क्षीण हो रही थी। जीवन की प्रतिष्ठा अनकरीब नष्ट हो रही थी। मानवेतर प्राणियों के जीने का मूलभूत अधिकार खत्म हो रहा था। यह अधिकार प्रस्थापित करने की आकांक्षा परिपूर्ण करने हेतु बुद्धावतार हुआ। जैसी समष्टि की आकांक्षा वैसा अवतार।

उस युग की राज्यव्यवस्था गणतन्त्रीय थी और उसका चुना हुआ सभापति शुद्धोधन (शुद्ध + ओदन अर्थात् शुद्ध चावल) था जिसे राजा कहने की प्रथा थी। कपिलवस्तु के मूल स्थान की बाबत मतभेद थे। आर्कियोलाजिकल सर्वेक्षण करनेवाली जापान की एक टुकड़ी ने नेपाल में तिलारकोट के पास उत्खनन करके उस स्थल को कपिलवस्तु बताया। फिर सन् १९७१ में उत्तर प्रदेश में पिपरहवा ग्राम में हुए उत्खनन के समय राजा शुद्धोधन के महल के अवशेष मिले। अब इस बावत कोई मतभेद की बात नहीं रही है। चीनी यात्रियों फाहियान और ह्युएनसंग ने लुम्बिनी और कपिलवस्तु के बीच की दूरी लगभग सोलह किलोमीटर और अट्ठाईस किलोमीटर बतायी थी। लुम्बिनी और पिपरहवा (कपिल-वस्तु) के बीच एक बड़ा ताल आता है। इस ताल के उत्तर छोर से चलना शुरू करें तो दोनों स्थानों के बीच का अन्तर सोलह किलोमीटर होगा जबकि दक्षिण छोर से चलें तो अट्ठाईस किलोमीटर होगा। अन्य अनेक तथ्य पिपरहवा ही कपिलवस्तु का वास्तविक स्थल है इस बात का समर्थन करते हैं। 'ललित विस्तर' ग्रन्थ में कपिलवस्तु का वर्णन 'हरे जङ्गलों और टीलों के बीच आया स्थान' कहकर किया गया है। राजा शुद्धोधन के महल के अवशेषों के सामने खड़े हों तो आज भी यह वर्णन सत्य होता दिखाई देता है। यहाँ के खेतों में जो चावल होते हैं उन्हें 'काला-नमक चावल' के नाम से जाना जाता है और तारीफ की जाती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। मैं वहाँ महल के अवशेष के सामने खड़ा था तब एक लड़के ने जमीन पर से काले पड़ गये, सदियों पुराने कार्बनाइज्ड चावल के दाने दिखाये, पर ऐतिहासिक स्थलों पर ('अकबरी लोटा' नामक हिन्दी कहानी में वर्णित) ऐसी धोखाधड़ी सामान्य मानी जाती है यह सोचकर मैंने ये चावल नहीं लिये।

नेपाल के लुम्बिनी देवी ग्राम में जमीन में धँस गये तीन टूटे-फूटे मकानों को खोदते हुए उनमें से अशोक का शिलालेख मिल गया। इस पर पाली भाषा में उत्कीर्ण शब्दों का अनुवाद इस प्रकार है :

'देवों के प्रिय, प्रियदर्शी (अशोक) राजा ने अपने अभिषेक के बीस वर्ष बाद, इस स्थान पर शाक्य मुनि बुद्ध जन्मे थे इससे स्वयं यहाँ आकर पूजा की, चारों ओर से शिला-स्तंभों की दीवार बाँधकर (यह) शिलास्तम्भ स्थापित किया। इस स्थान पर भगवान् बुद्ध जन्मे थे इसलिये लुम्बिनी ग्राम का महसूल माफ किया और थोड़ा वर्षासन बाँध दिया।'

युद्धग्रस्त मानव-जाति की उहापोह का प्रतीक : अशोक

एडविन आर्नल्ड ने अपने काव्य-ग्रन्थ 'लाइट आफ एशिया' में भगवान् बुद्ध को एशिया की जगमगाती ज्योति के रूप में प्रस्थापित किया है। वास्तव में तो बुद्ध को एशिया का गिनना यह सूर्य की दीप्ति को पृथ्वी के सँकरे सन्दर्भ में तौलने के समान है। भारत में बुद्ध की पचीसवीं सदी का उत्सव हुआ तब पण्डित नेहरू ने कहा कि 'दुनिया को बुद्ध और युद्ध के बीच एक को चुनना होगा।' सर्वनाश के कगार पर खड़ी युद्धग्रस्त मानव-जाति की आकांक्षा निरस्त्रीकरण की है और इस आकांक्षा का प्रतीक सम्राट् अशोक है। युद्ध की निरपवाद क्रूरता के सामने तो बुद्ध द्वारा प्रबोधित निरपवाद करुणा का कवच ही टिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता है। स्नेह-रश्मि के हायकू में बुद्ध की करुणा और अणुशक्ति के फनों को इस प्रकार 'जक्स्टापोज' किया गया है :

तथागत की
मैत्री मुद्रा, अणु का
अघोर पंजा।

प्रश्न यह उठता है कि संहारक शस्त्रों की दण्डशक्ति के विरुद्ध बुद्ध का अनुशासन टिक सकता है क्या? बुद्ध का अनुशासन माने क्या? धम्मपद में कहा है, 'सभी पापों से विरत होना, पुण्य का संचय करना और स्वचित्त का संशोधन करना यही बुद्ध का अनुशासन है।'

कलिंग-विजय के बाद सम्राट् अशोक के हृदय में मानव-संहार की बावत मंथन आरम्भ हुआ और उसे युद्ध की हिंसा की निरर्थकता समझ में आयी। पछतावे के विशाल निर्झर में डुबकी मारकर वह बाहर आया और श्रमण उपगुप्त ने उसे बुद्ध की शरण में लिया और दीक्षा प्रदान की। अब के अणुयुद्ध के बाद कोई अशोक पछताने के लिए भी जीवित बचेगा क्या?

आज मानव-जाति के हृदय में एक और भी आकांक्षा अंकुरित होकर वृक्षत्व प्राप्त करती दिखाई पड़ रही है। यह है समत्व की आकांक्षा। तीसरे विश्व के देश गरीबी में सड़ रहे हैं। एशिया और अफ्रीका के देश साम्राज्यवादी शासन से मुक्त अवश्य हुए हैं, पर अभी गरीबी के अभिशाप से मुक्त नहीं हुए हैं। गरीबी, हिंसा का सबसे कुरूप स्वरूप है ऐसा अब समझा जाने लगा है।' कोई व्यक्ति युद्ध में मरे या भुखमरी से धीमे-धीमे मरे, इन बाबतों के बीच कोई तात्त्विक भेद नहीं हो सकता। इस प्रकार करुणा और समत्व की दोहरी आकांक्षा जन्मी है, इससे बुद्ध का स्मरण विशेष रूप से होता है। बुद्ध के जीवन-दर्शन का मूल्यांकन करते समय, आज का यह मानवीय सन्दर्भ याद रहे यह जरूरी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्ध और नयी पीढ़ी

२५०० वर्ष बाद भी आज की पीढ़ी को आकर्षित कर सके ऐसा कुछ हमें बुद्ध के पास से मिला है क्या ? उनकी कितनी ही खूबियाँ ऐसी थीं जो आज की पीढ़ी को अवश्य ही पसंद आ जायें। काकासाहब-कालेलकर ने ये खूबियाँ सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की हैं। वे लिखते हैं :

'कोई भी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय में जो विशिष्टताएँ प्रस्फुटित होती हैं वे सूक्ष्म रूप में उसके संस्थापक के जीवन में होनी ही चाहिये। यह बात यदि सत्य हो तो गौतम बुद्ध में सुन्दर कथायें कहने की कला, तात्त्विक चर्चा करने की युक्ति और हर परिस्थिति का काव्य पहचानने की दृष्टि होनी ही चाहिये। बुद्ध-चरित्र ने कलाकारों को जितनी प्रेरणा दी है इतनी तो राम, कृष्ण और ईसा को छोड़कर शायद ही किसी और ने दी होगी।' (बुद्ध-चरित—ले० धर्मानन्द कोसाम्बी)

नयी पीढ़ी को आकर्षित कर सके ऐसा बुद्ध के जीवन में बहुत कुछ है यह सच है, पर आज की पीढ़ी का स्वभाव ही ऐसा है कि कोई बात केवल श्रद्धा से स्वीकार नहीं करती। पुनः ढाई हजार वर्ष बीत जाने के वाद भी यह पीढ़ी बुद्ध की बातों को यथावत् स्वीकार कर ले यह वांछनीय होगा क्या ? किशोरीलाल मशरूवाला के निम्नांकित विधानों में से इस प्रश्न का समाधान प्राप्त होता है :

'जिसमें जान-बूझकर झूठे विधान न किये गये हों ऐसा तो जगत् में एक भी धर्म नहीं है, यह कितनी दुःखद हकीकत है। इसी प्रकार कोई भी धर्म आरम्भ में जितना शुद्ध था उतना ही शुद्ध होकर आये, तो भी वह पूरा-पूरा स्वीकार्य नहीं हो सकता। पचीस सौ वर्ष पहले हुए सत्पुरुष हमारे लिये आदरणीय हो सकते हैं, होने भी चाहिये, पर हमें आज अनुसरण करने के लिये तो नये ही सत्पुरुष चाहिए। प्राचीन बुद्ध और उनका धर्म या संघ आज हमारे आश्रय-स्थल नहीं हो सकते।'

(बुद्ध-चरित—ले० धर्मानन्द कोसाम्बी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मशरूवाला की यह स्पष्ट बात सभी धर्मों पर लागू होती है। हमें विक्रम राजा की भाँति (इस या उस धर्म के) शव कन्धे पर लेकर चलते रहने की आदत पड़ी है। धर्म का सारतत्त्व और कितनी ही अच्छी बातें ग्रहण करने के बदले हम धर्म को क्रियाकाण्डों में, बाह्याचारों में, जनूनी शास्त्रार्थों में या वितण्डावाद में बन्दी बना देते हैं। फिर होता यह है कि धर्म-तत्त्व उलझ जाता है और धार्मिक उन्माद रह जाता है। धार्मिक उन्माद में से एक प्रकार की बंधकता पैदा होती है और जहाँ बंधकता होगी वहाँ गन्दगी होगी ही। नदी बहती रहे तो उसमें होती गन्दगी थोड़ी भी सह्य बनती है, पर तालाब की गन्दगी बहुत हठीली होती है। पन्थों और उपपन्थों में बन्धक बनी तथाकथित धार्मिकता की उठापटक कम नहीं होती। इस चारुतर प्रदेश में ही उपपन्थों के बीच की तकरार में खून ही बहा है क्या ? एक सच्ची घटना सुनाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। हमारे विश्वविद्यालय में स्वामीनारायण-पन्थ के वडताल नामक उपपन्थ के एक सज्जन प्राध्यापक के रूप में कार्य करते हैं। उनके पुत्र का विवाह हुआ तब उस उपपन्थ के साधुओं ने उनसे पूछा, 'पटेल, समधी चतुर-मूर्ख तो नहीं है न ?'

बुद्ध की शिष्या मिगारमाता ने एक गाँठ बाँधने लायक बात कही, 'आदमी बासी अन्न ही खाता है। ताजा न मिले तब भले काम निभा लिया जाय, पर उसे पथ्य तो नहीं ही कहा जा सकता।' नयी पीढ़ी की रट ये है कि शास्त्रों की पुरानी बातें या तो फेंक दी जायँ या फिर उन्हें नये संदर्भ में बिन-चुनकर फिर चालकर तथा फटककर योग्य रूप में प्रस्तुत किया जाय। रेफ्रिजरेटर में से ठण्डी दाल निकालते हैं तब हम उसे फिर से गरम तो करते ही हैं। हमारे पादरी, मुल्ला और महन्त तो हजारों बरस पुरानी बानगी परोसते समय इतनी-सी जहमत उठाने को भी तैयार नहीं होते। नयी पीढ़ी को ठंडे, बासी उपदेश न जँचे यह सत्य है, पर इस कारण रेफ्रिजरेटर सहित दाल फेंक देना क्या ठीक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होगा ? आज के विश्व-संदर्भ में बुद्ध की बातों को न समझें तो अवश्य ही समझा जायगा कि ऐसा करना हमें पोसायगा नहीं।

बुद्ध की विचार-क्रांति आज भी विद्यमान है

बुद्ध समन्वयवादी क्रांतिकारी थे। वे क्रांतदर्शी थे। यह साबित करने के लिए उनके जीवन-वृत्त में से अनेक घटनाएँ प्राप्त हो सकती हैं। प्रश्न अवश्य उठता है कि कोई क्रांतिकारी भला समन्वयवादी हो सकता है क्या ? हम जानते हैं कि बुद्ध ने मध्यम-मार्ग का प्रतिपादन किया था। मध्यम-मार्ग की हिमायत करनेवाला भला क्रांतिकारी हो सकता है ? हमारी मुश्किल यह है कि हम 'क्रांति' के साथ लकड़हारे को जोड़ते हैं, माली को नहीं। अंधकार में कोई दिया जलाये तो उसे क्रांति नहीं मानते, पर मशाल से आग लगाये तो उसे क्रान्ति कहते हैं। बुद्ध के जीवन में विद्यमान क्रांति-तत्त्व सिलसिले से समझ लें।

उस युग में कर्मकाण्ड के नाम पर दम्भ, हिंसा और पाखण्ड पराकाष्ठा पर पहुँचे थे। बुद्ध ने कहीं भी वेद की निन्दा नहीं की है। ईश्वर के अस्तित्व के बारे में उन्होंने कुछ भी नहीं कहा है। इस कारण अनेक विचारकों ने उन्हें निरीश्वरवादी कहा है। ईश्वर और वेद के नाम पर जो दुराचार फैला था उसके कारण उन्होंने बारंबार मैत्री, करुणा और अहिंसा जैसी बातों पर जोर दिया और आत्मा तथा परमात्मा की मीमांसा को एक बाजू रखा। उस जमाने में ईश्वर और वेदों को एक ओर रखकर धर्म की बात करना अत्यन्त कठिन था। स्व० राजाजी ने ६-५-१९५६ को आकाशवाणी से प्रसारित वार्ता में इस बात पर प्रकाश डाला था। उन्होंने कहा था :—

'सबके प्रिय भगवान् बुद्ध ने कभी भी नहीं कहा कि वे भगवान् के पुत्र, अवतार या पैगम्बर हैं। फिर वे स्वयं किसी धर्म की स्थापना कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे हैं ऐसा भी नहीं कहा। धम्मपद के छब्बीसवें वग्ग में यह बताया है कि आदमी सच्चा ब्राह्मण बनने की योग्यता कैसे प्राप्त कर सकता है। यह भाषा ऐसे व्यक्ति की नहीं है जो ब्राह्मणों की या हिन्दुओं की श्रद्धा समाप्त करना चाहता हो। कर्म के सिद्धान्त का अस्वीकार तो एक ओर रहा, उन्होंने तो जिसमें अच्छे या खराब विचारों और कर्मों का परिणाम निश्चित है ऐसे कर्म-सिद्धान्त पर बल दिया। बुद्ध ने आत्मा के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया है परन्तु उसके अमरत्व और पुनर्जन्म पर जोर दिया है। उनका निर्वाण माने शून्यता (नथिंगनेस) में परिणति नहीं, बल्कि नदी का समुद्र में विलीन होना है।'

('बुद्ध और बौद्ध धर्म'—ले० चन्द्रबली त्रिपाठी)

हिन्दुओं में स्त्रियों को वेदाधिकार नहीं था। उन्हें तो पुराण पढ़ने की ही छूट थी। बुद्ध और महावीर ने स्त्रियों को संघ में स्थान दिया। बहुत समय तक भिक्षुणियों का संघ बुद्ध ने स्थापित नहीं किया था। पर कालांतर में आनन्द के आग्रह पर वे इस हेतु सहमत हुए। आज भी अभी पश्चिम में स्त्री-मुक्ति-आन्दोलन चल रहा है। अभी आज भी प्रतिदिन दिल्ली में दो स्त्रियाँ दहेज-मृत्यु का शिकार बनती हैं। दहेज की प्रथा स्त्री को एक 'चीज' बना देती है। स्वीकार करना होगा कि स्त्री-मुक्ति की सच्ची शुरुआत महावीर और बुद्ध ने की थी। विशाखा जैसी गृहिणियों ने तो उपासक-वर्ग में अग्रस्थान प्राप्त किया। फिर नकुल माता नामक एक प्रमुख उपासिका ने तो अपने पति को उपदेश भी दिया।

वर्णभेद से बजबजाते उस जमाने में बुद्ध ने संघ में ब्राह्मणों के साथ चाण्डालों को भी स्थान दिया। उन्होंने कहा था : 'जाति के कारण कोई चाण्डाल नहीं होता या कोई ब्राह्मण नहीं होता, कर्म से चाण्डाल होता है और कर्म से ब्राह्मण होता है।' उनके संघ में सोखक नामक चाण्डाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी था। भिक्षुसंघ में सारिपुत्त, कात्यायन आदि बड़े तत्त्वज्ञानी थे और भिक्षुणी संघ में क्षेमा, उत्पलवर्णी जैसी विदुषियाँ भी थीं। फिर उस युग में केवल ब्राह्मण ही समझ सकें और उसके द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकें ऐसी संस्कृत भाषा के स्थान पर उन्होंने पाली जैसी सरल, लोकभोग्य भाषा का उपयोग किया। ज्ञान को ब्राह्मणत्व की कैद से छुड़ाकर एकदम अन्तिम छोर के आदमी तक ले जाने का यह प्रयत्न अत्यन्त क्रांतिकारी था।

अभी आज भी स्त्रियों को वास्तव में सच्ची समानता सम्प्राप्त नहीं हुई है। आज भी दुनिया के पिछड़े देशों में बसे लोगों का शोषण चालू है। आज भी युनिवर्सिटियों में चिपटा ब्राह्मणत्व कैम्पस छोड़कर निचले स्तर पर जमे हुए रोग, अज्ञान, वहम, अन्धश्रद्धा, निरक्षरता और शोषण की परतें उधेड़ने के लिए अधिक उत्सुक नहीं है। गांधी के जाने के बाद इतने वर्ष बीतने पर भी अस्पृश्यता नहीं गयी है और हरिजनों की हत्या हो रही है। आज भी देवता को रिझाने के लिये पशुओं की और कभी-कभी मानव की भेंट चढ़ाई जाती है। कलकत्ता में काली के मन्दिर में होती पशुहत्या का उल्लेख करके गांधीजी ने महादेवभाई से कहा था : 'चलो, हम दोनों चलकर वहाँ सत्याग्रह करें और उन्हें पशुहत्या करने से रोकें, फिर कुपित हुए बंगाली ब्राह्मण हम पर टूट पड़ेंगे और हमारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। यह पशुहत्या रोकने में हमारे प्राण भी जायँ तो भी क्या ?' (बापूनी झाँकी—काकासाहब कालेलकर, पृ० ५९)[1]

---

१. इस पुस्तक में काकासाहब ने इस घटना का भी उल्लेख किया है। बापू बुद्ध भगवान् के मिशन के बारे में बोल रहे थे। बुद्ध भगवान् की परिस्थिति कैसी थी और उसमें उन्हें अपना मिशन किस प्रकार मिल गया इसकी चर्चा हो रही थी। बापू अपने विषय में इतने तल्लीन हो गये कि जहाँ बुद्ध के विषय में 'देन ही सॉ' कहना चाहिए था वहाँ उनके मुँह से 'देन आई सॉ' निकल गया। राजाजी, महादेवभाई और काकासाहब ने इस तादात्म्य की नोंध बाद में हुई चर्चा में ली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज भी जनसामान्य न समझ सके ऐसी परदेशी भाषा में न्याय-तन्त्र और कितने ही अंशों में राजकाज चलता है। शिक्षा के माध्यम के रूप में भी अंग्रेजी अड्डा जमाकर बैठी है और सम्पन्न लोगों के बच्चे तो गुजराती में रोना भी भूल गये हैं। आचार्य कृपालानी ने मजाक में कहा था कि मालदार लोगों के कुत्ते भी अंग्रेजी में कुछ कहा जाय तो समझ लेते हैं।

जब आज ऐसी स्थिति है तो २५०० वर्ष पहले वर्णधर्मी समाज में दलित, शोषित और पीड़ितों की दशा कैसी रही होगी? आज भी कन्या की शिक्षा-दीक्षा प्रतिशत की दृष्टि से पंगु है तो फिर उस जमाने में स्त्रियों को भिक्षुणी बनाने के कदम ने कैसा वैचारिक तूफान सर्जा होगा? देहदमन और कठोर तपस्या करनेवाले श्रमण पन्थवालों ने तो बुद्ध को 'धर्मभ्रष्ट' घोषित किया। स्वयं उनके सहयोगी पाँच भिक्षुओं को भी आरम्भ में वे 'दम्भी' प्रतीत हुए थे, कारण कि देह-कष्ट के बारे में बुद्ध के विचार अनुभव से परिवर्तित हुए थे। अन्य श्रमणों के नियम केवल निषेधात्मक थे, जबकि बुद्ध का मार्ग विधायक था। उस युग का श्रमण-धर्म सूक्ष्म जीव-जन्तुओं को भी हानि न पहुँचे ऐसी सूक्ष्म दया-दृष्टिवाला था। वे सर्वसंग का परित्याग करके जंगल में रहते थे। राजकाज में और धार्मिक कार्यों में हिंसा का प्रभुत्व था। एक ओर हिंसा करनेवाले और दूसरी ओर जंगल में रहकर अहिंसा का पालन करनेवाले दोनों वर्ग, मनुष्य की बाबत और समाज के प्रति अनकरीब उदासीन थे। युद्ध में हजारों लोग कट मरते इस बाबत उन्हें कुछ भी माया-ममता नहीं लगती थी। श्रमणों के उदासीन दया-धर्म को बुद्ध ने आदमी की ओर मोड़ा और समाज की ओर उन्मुख किया।

विचार-सरिता में से कुछ एक अंजुरियाँ

मालकम मुगेरिज ने एक बार कहा था कि भारत एक ऐसा देश है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ 'विचार करना' टालना अशक्य बन जाता है। बुद्ध की विचारधारा तो महानद जैसी दीखती है। उसका फलक बहुत विशाल है। समय की दृष्टि से देखें तो इसका विस्तार ढाई हजार वर्ष समेट लेता है। व्यापकता की दृष्टि से बुद्ध-विचार-धारा अनेक देशों को आवृत करती है। उसकी सबसे पुरानी और मूल विचारसरणी से सबसे निकट की विचारधारा थेरवाद (वड़ों का सिद्धान्त) मानी जाती है, जो आज भी श्रीलंका, वर्मा, थाईलैण्ड और कम्बोदिया में प्रचलित है, उसकी महायान (वड़ा वाहन) विचारधारा बाकी के बौद्ध-धर्मी देशों में प्रचलित है, परन्तु इसमें भी तिब्बत का लामावाद भिन्न हो जाता है। भूटान, सिक्किम और नेपाल प्रभृति देशों के बौद्ध आचार-विचार पर तिब्बत की छाप दिखती है। फिर जापान में जेन-विचारधारा प्रवल है। जापान की जेन-विचारधारा पहले चीन में विकसित हुई। जापान का जेन शब्द अपने चीनी पूर्वज 'चान' का अपभ्रंश है और चान आया है संस्कृत के 'ध्यान' शब्द के अपभ्रंश के रूप में। ई० स० ५२५ में बोधीधर्म (जो चीन में 'तमो' और जापान में 'दरुमा' के नाम से जाना गया) कांजिवरम से चीन गया और उसने शील, ध्यान और प्रज्ञा पर जोर दिया।[१] संक्षेप में चीन और कोरिया की बौद्ध-विचारधारा की मुद्रा अन्य देशों से भिन्न हो जाती है। विषय-विस्तार की दृष्टि से भी बुद्ध-विचारधारा का फलक व्यापक प्रतीत होता है। इसमें मनोविज्ञान, धर्म, दर्शनशास्त्र, आधिभौतिक मीमांसा, रहस्यवाद, चमत्कार और विधि-विधान का समावेश होता है। समय, स्थिति और विषयवस्तु की ऐसी व्यापकता के कारण मेरे लिए इस एक प्रवचन में किन बातों का समावेश किया जाय इस दृष्टि से अनेक मुश्किलों का अनुभव हुआ है।

---

१. आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय खेल कराटे का जनक भी बोधिधर्म था, ऐसा कहा जाता है। पशु-पक्षियों की गतिविधि के गहन अध्ययन के अन्त में कराटे का उद्भव हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रिसमस हम्फ्रे की पुस्तक में से मुझे अपनी मुश्किलों का समाधान मिल गया। सभी बौद्धधर्मी देशों के धर्मगुरुओं का मन्तव्य एकत्र कर निकाली गयी कुल बारह सिद्धान्तों की सूची क्रिसमस हम्फ्रे की पुस्तक में दी गयी है। इन बारह मुद्दों को ध्यान में रखकर, विचार-सरिता से कुछ अंजुरियाँ भरने का मैं इस समय प्रयत्न कर रहा हूँ। इन बारह मुद्दों को छानते समय मैं जहाँ संभव है वहाँ अपनी टिप्पणी भी देना चाहूँगा। छोटे मुँह बड़ी बात और वह भी अल्प समय में आपके जैसे सुज्ञ श्रोताओं के सामने करने का काम कितना मुश्किल है इसकी प्रतीति मुझे इस समय हो रही है। एक क्रम से बारह मुद्दों को लेंगे :

१. निर्वाण : प्रत्येक मानव का निर्दिष्ट ध्येय

किसी व्यक्ति को तीर लगे तो क्या हो ? यह तीर किसने चलाया, तीर कितना लम्बा है, वह किस धातु का बना है, ऐसी जानकारियों में समय नष्ट करना आदमी को पोसायगा क्या ? ऐसा ही निर्देश मुक्ति के लिये या निर्वाण के लिये भी होना चाहिए। बौद्ध-विचारधारा में निर्वाण जीवन-साधना की पूर्णाहुति है; अस्तित्व की सार्थकता का अन्तिम चरण है और परम ध्येय है। बहुत वर्षों पहले गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उपस्थिति में बुद्ध-धर्म के विद्वान् एकत्र हुए थे। सभी प्रवचन पूरे होने पर गुरुदेव ने प्रश्न पूछा, 'निर्वाण की अनुभूति शब्दों में कैसे व्यक्त हुई है ? निर्वाण क्या वस्तु है ?' पण्डितों के पास कोई स्पष्ट उत्तर नहीं था।

निर्वाण की बाबत अधिक तो क्या कहूँ ? मुझे तो 'बोधिसत्व' की संकल्पना जँच गयी है। जो निर्वाण के मार्ग पर चलने की चेष्टा कर रहा है और कुछेक जन्मों में उसे प्राप्त करनेवाला है उसे 'बोधिसत्व' कहते हैं। (बोधिसत्व उसे कहते हैं जो सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति चाहता है, जिसके चित्त में जीवलोक के प्रति करुणा के भाव का प्रादुर्भाव हो सकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। बोधिसत्व की साधना प्रज्ञापारमिता की है। प्रज्ञापारमिता का पर्याय है 'धर्मधातु', तथागत बोधिसत्व में से पैदा होते हैं।) 'एवरी मैन इज़ इंचिंग टुवर्ड्स गॉडहुड' दूसरे शब्दों में कहें तो हमारी जीवन-यात्रा एक अर्थ में निर्वाण की ओर उन्मुख यात्रा बननी चाहिये। जब बोधि (संपूर्ण ज्ञान) प्राप्त होती है तब सभी उछलकूद शेष हो जाती है। 'गीता' में 'निर्वाण' शब्द कुल पाँच बार इस्तेमाल हुआ है—ब्रह्मनिर्वाणम्–(अध्याय २ श्लोक ७२ तथा अध्याय ५ में २४,२५,२६ के श्लोक) तथा निर्वाणपरमाम्–(अध्याय ६ श्लोक १५वाँ)। हिन्दू-जीवन दर्शन में निर्वाण का अर्थ है मोक्ष या मुक्ति। जैन-दर्शन में भी निर्वाण (निब्बाण) की व्याख्यायें दी गयी हैं। 'समणसुत्त' में कहा है, 'जहाँ नहीं है दुख न सुख, न पीड़ा, न बाधा, न मरण और नहीं है जन्म—इसीका नाम है निर्वाण। जहाँ नहीं है निद्रा, न है तृष्णा और नहीं है भूख—इसी का नाम है निर्वाण।' बौद्ध धर्म के पाली त्रिपिटक में 'निर्वाण' की व्याख्याएँ दी गयी हैं। भगवान् बुद्ध सिद्धार्थ थे तब मन की भूमिका पर थे, पर बोधि प्राप्त हुई तो मन की समस्त दीवारें टूट गयीं और वे परम चेतना में प्रतिष्ठित हुए। 'सुत्तनिपात' में निर्वाण को 'अन्तिम शुद्धि' के रूप में वर्णित किया गया है। इस प्रकार निर्वाण अहंकार-मुक्त मानव की परम सुखमय अवस्था है। **'निब्बाणं परमं सुखं।'** निर्वाण में अहम खर जाता है अर्थात् अहं की निःशेष निर्जरा (तप द्वारा पाप क्षीण करना) हो जाती है। 'जहाँ अहं है वहाँ निर्वाण नहीं होता। जहाँ निर्वाण है वहाँ अहं नहीं होता।' (मध्यम प्रतिपदा—ले० रणछोड़भाई पटेल) निर्वाण 'अमानुषी-रति' है और निर्विषय मन का आनन्द है। मानव की ऊर्ध्वतम चेतना का एक आयाम (डाइमेन्शन) अर्थात् आध्यात्मिक अनुभूति की चरम अवस्था है—निर्वाण। मैं इस बारे में इससे अधिक कुछ न कहूँ यही उचित होगा। मेरे सीमित क्षेत्र में जो मूलतः निःसीम है वह कैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समा सकता है ? शब्दों के कैदखाने में जो शब्दातीत है उसे कैसे बन्दी बनाया जा सकता है ? फिर मेरा अधिकार भी कितना है ?

एक साधक से बुद्ध ने कहा था, 'ऊपर, नीचे, सब ओर से मुक्त हो गया', 'सुत्तनिपात' में निर्वाण को 'सन्तपद' अर्थात् 'शान्तपद' के रूप में वर्णित किया गया है। हम 'ॐ शान्तिः, शान्तिः शान्तिः' कहते हैं। शान्ति माने चेतना का मौन। मन जब प्रशान्त, निष्कम्प, निर्भार, निष्पन्द और निःसन्देह बनता है तब परम शान्ति का अवतरण होता है। हमें तो अटकल ही लगानी रह जाती है। पाली त्रिपिटक में निर्वाण को 'अमृतपद' कहा है। इस अवस्था में मृत्यु मर जाती है। बुद्ध ने कहा, 'भिक्षुओ ! ध्यान दो, मुझे अमृत मिला है। मैं इसका उपदेश करता हूँ।' बोधि प्राप्त होने के बाद तथागत का पहला उद्गार था, 'अमृत के द्वार खुल गये हैं।' बुद्ध-विचारधारा की विशेषता 'प्रत्येक जीव अन्त में निर्वाण प्राप्त करेगा', ऐसी श्रद्धा में निहित है। यहाँ किसी भेदभाव को स्थान नहीं है। यहाँ किसीका कुछ भी बाद-बाकी नहीं है। बोधिसत्व चाण्डाल भी हो सकता है। आज की मानव-समत्व की आकांक्षा के साथ निर्वाण-प्राप्ति का ऐसा 'जन्मसिद्ध अधिकार' सुसंगत प्रतीत होता है। क्रिसमस हम्फ्रे कहता है, 'बुद्धिज्म बिगिन्स विथ द बुद्धाज इनलाइटेनमेण्ट एण्ड एण्ड्स विथ मैन्स'। प्रत्येक मानव में विद्यमान चेतना का जहाँ समादर है, स्वीकार है, वहाँ बुद्ध की, उनके द्वारा प्रबोधित धर्म की और उसके मार्ग पर चलने के लिये मन्थन करते संघ की शरण में जाना किसे अच्छा नहीं लगेगा ? निर्वाण-प्राप्ति भले दूर हो, बोधिसत्व बनना हमारे हाथ में है। ध्येय कितना ही दूर हो, परन्तु उस दिशा में चलना हमारे बस में है। मार्ग-दर्शन करानेवाला समूचा मार्ग बता सकता है यह सही है पर चलना तो खुद को ही होगा। तथागत ने मार्ग बताया है, पर कदम बढ़ाने का काम तो हमें ही करना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanaşi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. अस्तित्व : परिवर्तनशील और अनित्य

यूनान में बुद्ध के समय में ही हिरेक्लीटस् हुआ था, जिसने परिवर्तन के गूढ़ नियमों को समझाते हुए कहा था : 'आप एक ही नदी में दो बार स्नान नहीं कर सकते।' नदी प्रतिक्षण बहती रहती है, इससे सतत बदलती रहती है। जीवन एक प्रवाह है और उसमें कुछ भी कायम नहीं है। सभी कुछ अनित्य है। 'ताओ ते चिंग' में कहा है उस प्रकार, 'जो व्यक्ति हो सकता है वह ताओ, सनातन ताओ नहीं है।' बौद्ध विचार-धारा में मानव शरीर में अमर आत्मा बसती है यह बात स्वीकार्य नहीं है। 'वस्तु का आकार अनित्य है। जो अनित्य है वह दुखकारक है। जो दुखकारक है वह 'स्व' नहीं हो सकता। जो 'स्व' नहीं है, जो मेरा नहीं है या फिर जो मैं नहीं हूँ वह मेरा 'स्व' नहीं हो सकता।' (संयुक्त निकाय) संक्षेप में आत्मा सहित सभी कुछ अनित्य है। संगमरमर की इमारतों से लेकर पशु-पक्षी, मनुष्य और विचार तथा संस्थाएँ सभी कुछ नाशवंत है, सब कुछ पैदा होता है, बढ़ता है, सड़ता है और मरता है। आदमी की तो बात क्या करें ?

"सपनों के मसाले से
हम सब गढ़े गये जी
नन्हीं सी ये जिन्दगी
सूरत जैसे नींद सी"[1]

पुत्र के शव को हाथ में लेकर करुणामूर्ति बुद्ध के पास आयी किसी गोतमी को आश्वासन कैसे मिला ? जिस घर में कोई मरा न हो ऐसे घर से थोड़े राई के दाने ले आने को कहकर बुद्ध शान्त रहे माता को

---

१. 'द टेम्पेस्ट' [अंक=४ दृश्य = १] में संवाद :—

वी आर सच स्टफ, ऐज ड्रीम्स आर मेड आफ, एण्ड अवर लिटिल लाइफ, इज राउण्डेड विथ स्लीप।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारी बात समझ में आ गयी। जीवन एक सेतु है। सेतु पर घर नहीं बनाया जा सकता। जीवन एक सतत बहती घटना है, जो नित्य नया कलेवर धारण करती रहती है।

बुद्ध के मतानुसार सत् या असत् अर्थात् अस्तिवाद या नास्तिवाद- दोनों में से एक भी सत्य नहीं है। केवल परिवर्तन ही सत्य है। पर इससे हमें यह नहीं मान लेना है कि उन्होंने सत् तत्त्व की हस्ती से इन्कार किया था। सत् तत्त्व की हस्ती तो उन्होंने अवश्य स्वीकार की, पर इतना ही कहा कि यह तत्त्व निरन्तर गतिमान और परिवर्तनशील है। निरन्तर परिवर्तन होता है, पर साथ ही जिसका परिवर्तन होता रहे ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। 'कर्म है, पर कर्त्ता कोई नहीं है।' मानव की भाषा इस मत का वर्णन करने में लगभग असमर्थ सिद्ध होती है। बुद्ध के जैसा मत तत्त्वज्ञान के इतिहास में केवल दो ही बार प्रदर्शित हुआ कहा जाता है—एक बार यूनान में हिरेकलीटस् ने यह मत प्रस्तुत किया था, और दूसरी बार हमारे अपने युग में बर्गसां[1] की फिलासफी

१. हेनरी बर्गसां (१८५९–१९४१) विश्व को एक विकासशील प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। उनका 'सृजनात्मक विकासवाद' हेगल तथा स्पेन्सर से अलग है। दोनों की विचारधारा डार्विन के विकासवाद (इवोल्यूशन) से प्रभावित हुई। स्पेन्सर विश्व की प्रक्रिया के पीछे किसी अज्ञेय तत्त्व के व्यक्तित्व का स्वीकार करते हैं जबकि हेगल पदार्थवादी दृष्टि-बिन्दु ग्रहण करते हैं। बर्गसां बुद्धिगम्य तर्क (राशनाल्टी) और अनुभववाद (इम्पेरिसिज्म) की मर्यादा स्वीकार करता है। भारतीय वेदान्त की भाँति बर्गसां भी अन्तःस्फुरणात्मक अनुभूति को महत्त्व प्रदान करता है। वह मानता है कि व्यक्ति गतिशील है और संस्थाएँ स्थिर है। जिसे हम जड़-सृष्टि कहते हैं वह वास्तव में प्राणशक्ति के कुण्ठित होने का परिणाम है। केवल संवेदन शील इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता ज्ञान अधूरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उसका समर्थन होता देखने को मिलता है। ऐसा मत प्रगट करनेवाले बुद्ध की मौलिकता और तत्त्वदृष्टि अद्भुत होगी ऐसा कह सकते हैं।

३. केवल अन्तिम सत्य अपरिवर्तनशील है

सदियों से मानव अन्तर में एक उद्वेग सुषुप्ति के साथ पड़ा हुआ दिखायी पड़ता है। संसार की सभी चीजें अनित्य है पर इसमें भी आदमी किसी संभावित नित्य को ढूढ़ता रहा है। सब कुछ गतिमय हैं तथापि अगति का एक केन्द्र पाने को वह जूझता रहा है। व्यक्त जगत में भी अव्यक्त, अप्रमेय, अविनाशी, अविकारी, सनातन तथा अचल जैसी अन्तिम वास्तविकता (अल्टिमेट रियेल्टी) की शोध 'जागृत नर' द्वारा होती रही है। प्रीतम ने ऐसे जागृत मानवों को 'राम अमल में ओतप्रोत' रहनेवाले बताया है। इस नाशवन्त जगत में शाश्वत को शोध करने-वालों की भाषा कभी-कभी अलग पड़ सकती है, और अन्तिम सत्य को शब्दों में व्यक्त करने में होनेवाली मुश्किलों के कारण ऐसा तो होगा ही। लाओ-त्जु ऐसे अन्तिम सत्य को ताओ (इटर्नल ताओ) कहता है। हिन्दु जीवन दर्शन इसे आत्मतत्त्व कहता है। जैनदर्शन में जीव के तीन प्रकार गिनाये गये है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। इन्द्रिय समूह को आत्मा माने वह है बहिरात्मा; देह से भिन्न आत्मा को स्वीकार करनेवाला अन्तरात्मा है और कर्म-कलंक से विमुक्त आत्मा-ही परमात्मा है। बौद्ध धर्मी सनातन सत्य को धर्मकाय अथवा तथता (सचनेस) कहते हैं। अविरत रूप से परिवर्तनशील सृष्टि को वे 'संसार' कहते हैं। 'संसार' अर्थात् 'संसृति' अथवा 'प्रवाह'। बौद्ध विचार धारा

है। विकासवाद का उपयोग मानवीयता का अवमूल्यन करने के लिये हो रहा था तब वर्गसां ने उसी का आधार लेकर मानवीय स्वतन्त्रता, गरिमा और सर्जनशीलता को पुनः गौरवपूर्ण पद पर स्थापित किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अनुसार इस संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो लिपटे रहने योग्य हो। प्रज्ञावान आदमी वह है जो जीवन के बहाव का विरोध नहीं करता और बहता रहता है। चीन के एक भिक्षु से किसी ने पूछा, 'ताओ माने क्या।' उत्तर मिला, 'चलते रहो' (चरैवेति माने भी चलते रहो)। 'तथागत' शब्द का अर्थ भी कितना सुन्दर है! जो इस प्रकार आये और जाये वह तथागत। तथता की अनुभूति ही है बोधि (एबसोल्यूट नालेज) बोधि एक अनुभव है, अवस्था है। 'एवसोल्यूट नालेज इज दस ऐन इंटायरली नान इंटलेकक्चुअल एक्सपीरियेंस आफ रियेल्टी, ऐन एक्स-पीरियेंस एराइजिंग इन ए नान अर्डिनरी स्टेट आफ कांशसनेस ह्विच मे बी कॉल्ड ए 'मेडिटेटिव' आर मिस्टिकल स्टेट' (द ताओ आफ फीजिक्स-ले. फ्रिटजाफ काप्रा) बुद्ध आत्मा का स्वीकार नहीं करते, पर अन्तिम वास्तविकता को परिवर्तनशीलता से अलग मानने की बात ही यदि महत्त्वपूर्ण माने तो अन्तिम वास्तविकता को चाहे ज़िस नाम से पहिचान हर्ज ही क्या है। मूलतः एकही बात याद रखने योग्य है कि नक्शे की रेखा ही सच्ची सरहद नहीं है।

४. सृष्टि में कर्म का कायदा

ब्राह्मण-संस्कृति की ऋषि परम्परा और श्रमण-संस्कृति की मुनि परम्परा कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म के बारे में आसपास बहती दिखायी देती है। कार्य-कारण शृंखला और आघात-प्रत्याघात के ताने बाने माने कर्म का सिद्धान्त। आदमी का चरित्र अर्थात् उसके पूर्व विचारों और कार्यों का लेखा-जोखा। आदमी स्वयं अपने संयोगों का निर्माण करता है, भविष्य को आकार देता है और अन्तिम ध्येय के विषय में निर्णय करता है। योग्य विचार और कर्म द्वारा वह अपने स्व-भाव को परिशुद्ध करता रहे तो पुनर्जन्म के चक्कर से छुटकारा पाकर निर्वाण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त कर सकता है। ऐसा करने में बहुत समय लग जाय यह संभव है पर अन्त में प्रत्येक जीव निर्वाण प्राप्त करता है, ऐसी श्रद्धा यह बौद्ध विचार की खूबी है। प्रतिशोध, नसीब, भाग्य या किस्मत के स्थान पर यहाँ कर्म के नियम का महत्त्व है, जिसके आधार पर आदमी प्रतिक्षण अपना भविष्य स्वयं घड़ता रहता है। यहाँ फरियाद या दुर्बलता के लिए कोई स्थान नहीं है। आदमी द्वारा निर्मित भगवान के आगे कोई याचना नहीं है। परवरदिगार के प्रति परावलम्बन भी यहाँ बिखर जाता है और दीनता के स्थान पर वह स्वयं ही अपने कर्मों द्वारा अपने भविष्य का निर्माता है ऐसा आत्म-विश्वास खनकता दिखायी पड़ता है।

कहा है :
विचार बोयें और कर्म काटें
कर्म बोयें और आदत काटें
आदत बोयें और चरित्र काटें
चरित्र बोयें और भविष्य काटें

कोई भी कर्म बेअसर नहीं हो सकता। जैसे तालाब के जल में कंकड़ी डालें और गोल कुण्डलियाँ तालाब में फैल जायें वैसे ही हमारे कर्मों के साथ भी होता है। जीवन की अल्प अवधि में ही सभी कर्मों के परिणाम मृत्यु तक आ जायें ऐसा भी नहीं होता। यहाँ पुनर्जन्म की संकल्पना प्रगट होती है। पूर्व के ही नहीं, पश्चिम के अनेक मनीषियों ने भी यह बात वोल्टह्विटमैन स्वीकार की है। प्लेटो से शुरू करके ब्लेक, शापेनहाव्र, गोथे, बोहेमी कांट, स्वीडनबर्ग, ब्राईनिग, इमर्सन और फ्रिटजाफ काप्रा जैसे अणु-विज्ञानी ने यह बात एक या दूसरे रूप में स्वीकार की है। शरीर मरता है तब कर्म नहीं मरते। बौद्ध धर्म में एक कहावत है, 'मृत्यु का कारण रोग नहीं बल्कि जन्म है' चुआंग त्जु अपने गुरु लाओ त्जु के लिए कहता है 'गुरु आये तो ठीक समय पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आये और वे चले गये वह भी उनके आने का ही सहज उपक्रम था।' इस प्रकार मृत्यु माने जीवन के दूसरे स्वरूप का प्रवेश द्वार। बाद की यात्रा आदमी के संचित कर्मों के परिणाम पर अवलम्बित है।

उस जमाने में आदमी शास्त्र, पुरोहित, दैव और विधना का गुलाम बन गया था, बुद्ध ने इस धार्मिक गुलामी पर प्रहार किया और मुक्ति का मार्ग बताया। ईश्वर के प्रति की लाचारी भी आदमी को गुलाम बनाये यह उन्हें मान्य न था। इसी से उन्होंने कहा 'मेरा कर्म ही मेरी जाति है, और मेरा कर्म ही मेरा शरणालय है। और इस कर्म की शुद्धि का आधार सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प आदि हैं।'

पण्डित सातवलेकरजी ने तो गीता पर लिखी टीका का शीर्षक ही 'पुरुषार्थ-बोधिनी' रक्खा है। गीता ने कर्म-योग की महिमा स्थापित की और फल की आसक्ति बिना कर्म करने की हिमायत की। आज के जमाने में कर्म के प्रति बुद्ध का पुरुषार्थ-लक्षी अभिगम प्रगट हुआ दिखता है। ईश्वर में श्रद्धा न हो ऐसे लोगों को भी बुद्ध की बातों मे विद्यमान मानव मुक्ति, समत्व और आत्म-श्रद्धा की खनक स्पर्श कर जाती है। आज की पीढ़ी पुरोहित, पादरी और मुल्ला की गुलामी स्वीकार करने को तैयार नहीं है इतना ही नहीं, शास्त्र वचनों को (गले न उतरें तब तक) प्रमाण मानकर चलने को भी तैयार नहीं है। बुद्ध की बात आस्तिक और नास्तिक जैसे दोनों वर्गों को पसन्द आ जाय ऐसी है। ईश्वर की झक-झक में पड़े बिना भी मुक्ति मिल सकती है और उसके वास्ते कर्मशुद्धि ही एक उपाय है, यह बात उस युग में क्रान्तिकारी थी। पाप और पुण्य को बुद्ध ने स्वर्ग और नरक के साथ नहीं जोड़ा। कर्म का नियम कहता है कि जहाँ आघात होगा वहाँ प्रत्याघात भी होगा ही और जहाँ कारण होगा वहाँ प्रभाव अर्थात् परिणाम भी होगा ही। धम्मपद में कहा है :—

ताजा ना बिगड़े दूध, ताजा ना साले पाप,
राख में दबी आग जैसे, जलाये नित्य अनुसरण कर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्म का परिणाम हमारे ध्यान में न आवे इससे कोई यह नहीं कह सकता कि परिणाम नहीं होता। वैज्ञानिक कहते हैं कि पानी की एक बूंद को ठंडा करके फुलाया जाता है तब वह जिस जोर से कसमसाती है उस शक्ति से दुनियाँ को उठा लिया जा सकता है। पानी में विद्यमान यह शक्ति भले ही हमें दिखायी न पड़े पर इससे उसे नकारा नहीं जा सकता। बौद्ध विचारधारा तो इस सृष्टि को ही कर्म के नियम की अभिव्यक्ति के रूप में देखती है।

५. सबसे महान् नियम है करुणा

आज के प्रवचन का विषय मैंने 'करुणामूर्ति बुद्ध' रक्खा है अस्तु इस विषय की किंचित विशेष छानवीन करना चाहता हूँ। शुरूआत विनोबा के एक अवतरण से करूँगा :—

'बचपन में मैं वडोदरा में रहता था। वहाँ महाराज सयाजी राव का बुद्ध के प्रति अधिक झुकाव था अस्तु उन्होंने बड़ौदा के एक बगीचे में बुद्ध की मूर्ति स्थापित की थी। मैं हमेशा उस बगीचे में जाता था और बुद्ध की प्रतिमा को निरखा करता था। तब से मुझे बुद्ध की पगलहट लगी। गांधीजी भिन्न विचार के थे तथापि उन्हें भी बुद्ध की पगलहट लगी थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर, पण्डित नेहरू, डा० अम्बेडकर सभी भिन्न विचार धारण करते थे पर उन्हें भी बुद्ध की पगलहट लगी थी। इसके पीछे एक ही कारण है। बुद्ध आज के युग की भूख हैं। आज अनेक को बुद्ध के प्रति आदर आता है क्योंकि आज के युग की जो आवश्यकता है उसे बुद्ध पूरा करते हैं। आज विश्व को करुणा की आवश्यकता है।'

(लोकराज्य, २५ अप्रैल १९८१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्ध की करुणा की बुनियाद अद्वैत है। विविध रूपों में व्यक्त होता जीवन मूलतः एक, और अविभाज्य है। स्वरूप मृत्युधर्मी अवश्य है, परन्तु जीवन धारा अस्खलित है। जीवन की बुनियादी एकता के बोध से करुणा पैदा होती है। जीवन के अन्य स्वरूपों के साथ का आत्मोपम्य बुद्ध की करुणा की गंगोत्री है।[1] लोफ्टस हेर अपनी पुस्तक 'मिस्टिसिज्म ऑफ ईस्ट एण्ड वेस्ट' में कहता है :—

'कर्म अच्छा' है या बुरा यह जानने की कसौटी करुणा है। यह कोई स्थानीय, कामचलाऊ, मानवीय आचरण नहीं है। यह तो विश्व निर्मिती (कास्मास, ब्रह्माण्ड) का गुंजन है जो कान में गुनगुनाता है। संक्षेप में करुणा नीतिज्ञता की आधारशिला है, सभी नियमों का सार है, सनातन संवादिता का निर्झर है। जो ईस संवादिता में व्यवधान पहुँचायेगा वह दुखी होगा और बोधि प्राप्त होने में विलम्ब को आमन्त्रित करेगा।

ईसा की करुणा निम्नलिखित तीन वचनों में व्यक्त होती है—

(१) अपने पड़ोसी से अपने जैसा ही प्रेम करें।

(२) अपने शत्रु से भी प्रेम करें।

(३) मैंने आपसे किया है वैसा ही प्रेम आप एक दूसरे से करें।

---

१. आत्मौपम्येन सर्वत्र (गीता, अध्याय ६, श्लोक ३२), आत्मबुद्धि प्रसादजम् (गीता, अध्याय १८, श्लोक ६७)—अर्थात् आत्मभावना के प्रसाद से उत्पन्न हुआ। आत्मैवाभूद विजानतः (ईशावास्य उपनिषद् मन्त्र ७) एकत्वमनुपश्यतः (मन्त्र ७) इस प्रकार जीवन की एकता ही बुद्ध की करुणा का आधार है। जहाँ आत्मभाव हो वहाँ परायापन कहाँ टिक सकता है। 'आकार घड़े फिर जुदा नामरूप दिये, अन्ततः तो सोना सोना ही है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ 'पड़ोसी' से 'अपने जैसा' प्रेम करने की बात महत्त्वपूर्ण है। आत्मौपम्य विना यह संभव नहीं है। करुणा जब जीवन-रसायन बनती है तब कोई 'पराया' नहीं रह सकता। करुणा 'पराये' पर नहीं की जा सकती। वह तो समभाव है, एकत्व की अनुभूति है। एक प्रसंग में बुद्ध ने किसी भिक्षु को रोग के कारण हो रहे दस्त में लोटता देखा। उन्होंने तुरन्त उसे धोकर साफ किया। फिर उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं। यदि आप मेरी देखरेख करना चाहते हैं तो इस बीमार की परिचर्या करें।" हमारे समाज में गरीबों के प्रति दया व्यक्त करनेवालों की दया और बुद्ध की करुणा में बुनियादी गुणात्मक भेद है। हमारे दया-भाव में अहंकार है, पुण्य प्राप्त करने की आकांक्षा है, लोक में प्रतिष्ठा बढ़े ऐसी अभिलाषा है और जो दयनीय हैं उन पर उपकार करने का भाव है। परिशुद्ध करुणा सहज है और सम संवेदना का प्रकटीकरण है। एक उदाहरण द्वारा यह बात समझ लें। महल्ले में एक घर में आग लगती है और सारा घर ज्वालाओं की लपेट में आ जाता है। बाहर खड़े जनसमूह को ख्याल आता है कि एक बालक अन्दर रह गया है। ऐसे समय एक आदमी जीवन को संकट में डालकर आग में कूद पड़ता है और बालक को साक्षात् मृत्यु के मुख में जाकर बचा लेता है। यह आदमी वास्तव में बालक के प्रति दया के कारण आग में कूदता है क्या? एक तरह से देखें तो बालक की पीड़ा उसकी अपनी पीड़ा बन गयी और अपनी पीड़ा से छूटने के लिये वह आग में कूद पड़ा। दया तो वहाँ खड़े बहुत से लोगों को आयी होगी पर उस आदमी जैसी सम संवेदना दूसरों को नहीं हुई। जीवमात्र के प्रति ऐसा लगाव हो तब करुणा की कोई सीमा नहीं रहती। श्री रामकृष्ण परमहंस के लिये कभी-कभी पूजा के फूल तोड़ना मुश्किल हो जाता था। अलबर्ट श्वाइटजर ने इसी भाव से प्रेरित होकर 'जीवमात्र के प्रति समादर' पोषित करने की बात कही है। 'अहिंसा परमो धर्मः' जैसा कथन मूलतः महाभारत का है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और जैनधर्म का तो गुरुत्व मध्यबिंदु ही अहिंसा' है। करुणा भाव सार्वभौमीकरण हो तभी निरपवाद और निःसीम बनता है।

आज यदि छोटे मुँह कोई बड़ी बात कह जाऊँ तो मुझे क्षमा करेंगे। अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ कि हमारी पृथ्वी पर के जीवन को अणुबम से बचाने का अब एक ही उपाय आदमी के पास बचा है। जीवन का समग्र विनाश करने में अणुबम जितना सूक्ष्म, जितना व्यापक और जितना निरपवाद है उतनी ही सूक्ष्म, व्यापक और निरपवाद करुणा पोषित करने हेतु हमें प्रयास करना पड़ेगा। ऐसी करुणा को जातिनिष्ठा, पक्ष निष्ठा, सम्प्रदायनिष्ठा, ग्रंथ-निष्ठा, अभिप्राय-निष्ठा और राष्ट्रनिष्ठा से बचा लेकर जीवन-निष्ठ, मानव-निष्ठ और मूल्य-निष्ठ बनाना होगा। यह सृष्टि संवादिता से भरी हुई है। ब्रह्माण्ड का मधुर संगीत, माने 'कास्मोलाजिकल सिम्फिनी' हमारे द्वारा भंग न हो यह देखना होगा। जीवन की कला, जीवन की लय सम्भाले रहने की कला है। हमारे अस्तित्व में विद्यमान लय जब विश्व की लय के साथ एक रूप बनती है तब संगीति (हारमोनी) पैदा होती है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि बौद्ध परिषद के लिये 'संगीति' (संगीथि) शब्द प्रयुक्त होता है। करुणा माने विकसित मानव का दिव्य-गान। जेन पन्थी प्रज्ञा और करुणा को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते हैं। प्रज्ञा स्थिर है जबकि करुणा गतिशील है। प्रज्ञा माने होना (बीइंग) और करुणा माने बनना (बीकमिंग)। स्वेडनबर्ग 'दिव्य सयानापन', वैदग्ध्य और दिव्यप्रेम की बात करता है। जेन पंथ के अधिकारी पण्डित डॉ० सुजुकी कहते हैं कि : 'यदि सयानेपन का संबंध प्रज्ञा के साथ हो और प्रेम का संबंध करुणा के साथ हो तो ईसाई धर्म और बौद्धधर्म इस विषय में एक मत हैं। प्रज्ञा-विहीन करुणा अंधी और करुणाविहीन प्रज्ञा पंगु है। आवश्यकता है दोनों के बीच समन्वय की प्रज्ञावान करुणा और करुणावान प्रज्ञा ही आज के विश्व को बचा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकती है। प्रज्ञा और करुणा के बीच अन्योन्यपूरकता (काम्प्लिमेण्टॅरिटी) मूल्यवान है।

बुद्ध की करूणा कैसी निरपवाद है। यज्ञ में होनेवाली पशु हिंसा रोकने के लिये वे सब कुछ कर डालते हैं। सुजाता जैसी ग्राम कन्या का भोजन वे प्रेम से स्वीकारते हैं और आम्रपालीं (आम्बपाली) जैसी गणिका के यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं। अस्सी वर्ष की वय में उन्होंने चुन्द लोहार के यहाँ भोजन किया। फिर तत्काल ही पेट में दर्द होना शुरू हुआ। अवसान का समय निकट था। उन्हें दर्द हुआ यह जानकर चुन्द लोहार परेशान होगा यह मानकर वे आनन्द से कहते हैं, 'आनन्द। भोजन कराने के बाद चुन्द लोहार को कोई उलहना दे तो सम्भव है उसे बुरा लगे पर उससे तुम कहना कि सुजाता की खीर मुझे जैसी पोषक और मधुर लगी थी वैसा ही उसके यहाँ का भोजन लगा है। तथागत जिस दिन परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं उस दिन दी गयी भिक्षा महाफलदायक है। इस प्रकार उपदेश देकर चुन्द की शङ्का दूर करना।' (धर्मचक्रप्रवर्तन—मनुभाई पंचोली)

ऐसे करुणामूर्ति बुद्ध की विचारधारा आज के अणुयुग में अधिक समीचीन प्रतीत होती है। युद्ध हमारी वास्तविकता है, और शान्ति हमारा स्वप्न है। शान्ति वास्तविकता बने, इसकी पूर्व-शर्त है-'करुणा'।

६. चार आर्य सत्य

पहला आर्य सत्य : इस जगत में दुख है। जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु, अप्रिय का समागम, प्रिय का वियोग और इच्छित चीजों की अप्राप्ति इत्यादि के कारण दुख पैदा होता है। जो आदमी इन दुखों की बाबत सचेत नहीं होता वह धर्म की ओर कैसे उन्मुख हो सकता है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा आर्य सत्य : दुख कार्यकारण अर्थात् कर्म के नियम के कारण पैदा होता है। तृष्णा के कारण दुख पैदा होता है। तृष्णा तीन प्रकार की होती है, काम तृष्णा अर्थात् सांसारिक उपभोग की तृष्णा। दूसरी भाव तृष्णा अर्थात् जीने की तृष्णा, मरने के बाद स्वर्ग पाने की या सुख पाने की तृष्णा। तीसरी है विभव तृष्णा अर्थात् विनाश तृष्णा। (फ्रायड ने जिसे 'डेथ इंस्टिंक्ट' कहा है)

तीसरा आर्य सत्य : दुख के निवारण का उपाय है तृष्णा से बचना। तृष्णा त्यागे बिना दुख निरोध नहीं हो सकता। दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार दुख दूर करना आदमी के हाथ में है।

चौथा आर्य सत्य : दुख दूर करने और तृष्णा से बचने का उपाय है क्या? इसे कहते हैं दुख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा। बौद्धदर्शन की खूबी यह है कि वह दुख-निवारण भगवान या तकदीर पर नहीं छोड़ता। यह आदमी के स्वयं के प्रयत्न का ही फल हो सकता है। इसके लिये उन्होंने अष्टांग मार्ग का प्रबोध किया।

७. अष्टांग मार्ग

१. सम्यक दृष्टि : चार आर्य सत्यों का ज्ञान और नित्य अनित्य के बीच क. विवेक।

२. सम्यक संकल्प : पहला संकल्प यह कि **नैष्कर्म्य संकल्प** माने एकान्त वास के प्रति रुझान,

दूसरा संकल्प है **अव्यापाद संकल्प** माने प्राणिमात्र के प्रति शुद्ध प्रेम। तीसरा संकल्प है **अविहिंसा संकल्प** माने दूसरों को या स्वयं को त्रास न हो ऐसी इच्छा। (यहाँ अपने को त्रास देने की वृत्ति से बचने की बात महत्त्वपूर्ण है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. सम्यक वाचा : झूठ नहीं बोलना, चुगली नहीं खानी, कठोर वाणी का त्याग और निरर्थक वाणी का त्याग ।

४. सम्यक कर्म : जीव हिंसा का त्याग, चोरी का त्याग, व्यभिचार का त्याग और विषय वासना का त्याग ।

५ सम्यक आजीव : सात्विक आजीविका में जीवन को निभाना यह बात बहुत महत्त्व की है। गद्दी पर बैठ कर घोटाला करने वाला, चोरबाजारिया, मिलावट करने वाला और शोषण करने वाला आदमी भी कभी-कभी धार्मिक होने का ढोंग कर सकता है। सच्ची धार्मिकता तो प्रामाणिकता से रोटी अर्जित करने में हैं। (ईसाईयों में ब्रेड-लेबर की महिमा है)

६. सम्यक व्यायाम[1] : खराब विचार मन में न आवे इसके लिये प्रयत्न करना, ऐसा विचार आवे तो उसे मन में से दूर करने की चेष्टा करना। अच्छे विचार मन में न हों तो उन्हें लाना और अच्छे विचार मन में हो तो उन्हें दृढ़ करना।

७.. सम्यक स्मृति : शरीर का उसके यथार्थ रूप में अवलोकन करना। सुखदुख की संवेदना का अवलोकन करना, चित्तवृत्ति का अवलोकन करना। कार्य-कारण परम्परा का अवलोकन करना और जागृति संजोना।

८. सम्यक समाधि : चित्त की एकाग्रता, मन की निष्कंप अवस्था ध्यान द्वारा प्राप्त करके उपेक्षा और जागृति द्वारा निर्वाण के लिये आवश्यक-समाधि।

---

१. 'व्यायाम' का अर्थ यहाँ कसरत नहीं है। व्यायाम माने प्रयत्न।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. अन्तिम वास्तविकता अवर्णनीय है

आदमी ने भगवान की कल्पना की। इस कल्पना के सगुण और साकार स्वरूप या फिर निर्गुण निराकार स्वरूप भगवान का बौद्ध विचारधारा में कोई स्थान नहीं है। अन्तिम वास्तविकता अवर्णनीय है। उसके वर्णन में मानव की सीमाएँ ही व्यक्त होती है। बुद्ध मनुष्य थे और उन्होंने सम्बोधि प्राप्त की। जो सिद्धार्थ (अर्थात् जो सिद्ध हुआ वह) के लिये सम्भव है वह सबके लिए सम्भव है। जीवन का उद्देश्य है बोधि प्राप्त करना। चेतन की चरम अवस्था में अर्थात् निर्वाण की अवस्था में 'स्व' के सभी बन्धन बिखर जाते हैं। ऐसा निर्वाण पृथ्वी पर अपने जीवन में ही प्राप्त किया जा सकता है। निर्वाण कोई पारलौकिक अवस्था नहीं है। मनुष्य जो है वह बने यह प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है। होना (बीइंग) और बनना (बिकमिंग) के बीच का अद्वैत माने निर्वाण। इसी को बुद्धत्व कहते हैं। मार्टिन बुब ने यह बात सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की है। वह कहता है कि यदि कभी आदमी को भगवान के सामने खड़ा कर दिया जाय तो वे यह नहीं पूछेंगे कि 'तू बुद्ध क्यों नहीं बना ?' वे तो सिर्फ इतना पूछेंगे कि 'तूं, तूं क्यों नहीं बना ?' पातञ्जल योगसूत्र में यही बात एक दूसरे ढंग से कही गयी है। 'स्वरूपेऽवस्थानं' अर्थात् अपने वास्तविक रूप में अवस्थित होना। आज के आदमी के अनेक दुखों के मूल में कार्ल मार्क्स जिसे सम्बन्ध-विच्छेद (एलीनेशन) कहता है वह अवस्थित दिखना है। हम जो हैं, जैसे हैं, उससे अलग पड़ते जाते हैं। अपना असली स्वरूप गंवा बैठते हैं। महायान सम्प्रदाय का प्रवर्तक अश्वघोष था और नागार्जुन पर अश्वघोष की गहरी छाप पड़ी। नागार्जुन ने कहा कि अन्तिम वास्तविकता को विचारों और संकल्पनाओं द्वारा समझाना सम्भव नहीं है। उसने अन्तिम वास्तविकता के लिए शब्द प्रयुक्त किया 'शून्यता' (नथिंगनेस)। अश्वघोष जिसे तथता (सचनेस) कहता था वह यही शून्यता (नेति) है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह चर्चा यहीं समेट लें। बहुत से प्रश्न पूछनेवाली गार्गी को याज्ञवल्क्य ने कहा था 'मा ततर्क'। तर्क जहाँ बिखर जाते हैं ऐसी अवस्था को तर्क के तराजू पर किस प्रकार तौला जा सकता है? बुद्ध की मौलिकता यह है कि चरम अवस्था प्राप्त करने की लियाकत (एलिजिबिलिटी) प्रत्येक जीव में होती है, ऐसी बात उन्होंने प्रसारित की थी। फिर इसके लिये आदमी को स्वयं ही मंथन करना है इस बात पर उन्होंने बल दिया। ऐसे मंथन का मार्ग भी उन्होंने निर्देशित किया। सामान्य व्यक्ति को समझ में आवे ऐसी सरल भाषां में बताया और संघ में एक दम पिछड़े हुए को भी स्थान दिया। उस जमाने में ऐसा करना कोई सामान्य बात नहीं थी।

९. मध्यम मार्ग

दुख के मूल में तृष्णा है और दुख से बचने का मार्ग है **मध्यम मार्ग** दो छोर या दो अन्तिम बाबतों के बीच की सहजता सुरक्षित रखकर, संभालकर, तृष्णा घटाते हुए शांति प्राप्त करने का यह मार्ग है। यह जगत द्वन्द्वों से भरा है पर जो मूलभूत अद्वैत है (यूनिटी), वास्तविकता है उसे इन दो द्वन्द्वों के बीच और दोनो से परे होना चाहिये। मध्यम मार्ग माने सहज मार्ग। सुख की खोज में इन्द्रियों की लगाम छोड़ देना अन्ततः गलत काम है। इस प्रकार आत्मपीड़न और कष्ट की महिमा गाना भी उपकारक नहीं है। बुद्ध ने महाभिनिष्क्रमण किया, फिर कठोर तप किया और खूब कष्ट भोगा। अन्त में उन्हें मध्यम मार्ग का महत्त्व समझ में आया। बुद्ध ने लगभग पैंतालिस वर्ष तक उपदेश देने का काम किया। उनके उपदेश का सार है—मध्यम मार्ग। जैन-दर्शन सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चरित्र पर जोर देता है। जैन इन तीन बातों को रत्नत्रयी कहते हैं। बौद्ध विचारधारा की रत्नत्रयी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है—प्रज्ञा, शील और समाधि। जैन दर्शन और बौद्ध दर्शन में सम्यक् की महिमा है। सम्यक् माने 'साथ' 'योग्य' और 'पूरपूर'। मध्यम मार्ग पर आदमी को अपनी समग्र अखिलता के साथ चलना है। यह समूचा आदमी तो सद्‌गुणों और दुर्गुणों के मिश्रण का पिटारा है। केवल सद्-गुणों से भरा कोई आदमी नहीं होता इस कारण जरूरत पड़ती है विवेक बुद्धि की। मध्यम मार्ग अपनी विवेक बुद्धि को जगाते रहकर आत्म-विकास के पथ पर डग भरते रहने का मार्ग है।

चीनी तत्त्वज्ञान में भी भिन्न रूप से मध्यम मार्ग की महिमा देखने को मिलती है कन्फ्यूशियस के पौत्र ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है "द गोल्डेन मीन"। आधी सक्रियता, आधी निष्क्रियता, आधी प्रसिद्धि, आधी अप्रसिद्धि, आधी गरीबी, आधी समृद्धि जैसे दो छोरों के बीच के सन्तुलन की महिमा चीनी विचारधारा में देखी जा सकती है। चीन में "आधी-अ धी" की महिमा है। चीन की पाठशालाएँ भी आधी-आधी पाठशालाओं में बदल गयी हैं। ऐसे मध्यम मार्ग का आदर्श प्रस्तुत करते हुए एक चीनी कवि ने एक कविता लिखी है जिसकी शीर्षक है "द हाफ एण्ड हाफ सांग"।

बुद्ध का मध्यम मार्ग दो अन्तिम बातों के बीच का सीधा सादा समाधान नहीं है। दो व्यक्तियों के बीच मोलभाव के अन्त में या सौदेबाजी के अन्त में "बीच का रास्ता" निकले ऐसा यह मध्यम मार्ग नहीं है। आदमी को अपनी विवेकपूर्ण सहजता को क्रमशः ऊर्ध्वगामी बनाते रहना है। "सहज के किनारे" चलते रहकर मूल तक पहुँचना है। अतिशय और अभाव जैसे दो छोरों के बीच की सहज स्थिति सँभालकर बोधि प्राप्त करने की ओर आगे बढ़ना है। आदमी अपनी सहज लय तोड़कर कठोर साधना शुरू करता है तब कभी-कभी ऐसी प्रतिक्रिया जन्म लेती है जो साधना के मूलभूत हेतु को ही समाप्त करने वाली बन जाती है। कृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान ने भी गीता में 'सहज-कर्म' की (१८वाँ अध्याय, ४८वाँ श्लोक) महिमा गायी है। मेरी विनम्र मान्यता है कि बुद्ध ने मध्यम-मार्ग द्वारा प्रतिक्रियाओं को जन्म देनेवाले असहज और कष्टकेन्द्री दमन और निरे इन्द्रिय-जन्य सुख वैभव को दूर रखने का यह मौलिक उपाय बताया है। मध्यम मार्ग के मर्म को समझाने में निम्नलिखित पंक्तियाँ उपयोगी सिद्ध होंगी :—

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप,
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।

आज की युवा पीढ़ी निरे सुखवाद (रैडिकल हेडोनिज्म) की ओर मुड़ गयी है ऐसा वहम बहुत लोगों को हुआ है। एरिक फ्रांस ने निपट सुखवाद के सम्मुख लाल बत्ती दिखायी है। आल्डस हक्सले ने सुखवादी जवान की मनोदशा इस वाक्य में पेश की है : 'गिव मी हेम्बर्गर एण्ड ए टी० वी० सेट एण्ड डोण्ट बादर मी विद द रिस्पोन्सिबिलिटीज् आफ़ लिबर्टी'। ऐसी सुखवादी पीढ़ी को बुद्ध का मध्यम मार्ग आकर्षित कर सकता है। फ्रायड ने अचेतन मन की गहराई की थाह लेने का प्रयत्न किया और दमन (रिप्रेशन) की प्रतिक्रियाओं के खतरों को संसार के समक्ष पेश किया। बुद्ध का मध्यम मार्ग निरे सुखवाद और दमन दोनों के दूषणों से बचकर चलने की हिमायत करता है। संसार इस समय निरे सुखवाद के दूषणों से पीड़ित है और दमन के दूसरे छोर पर मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं से खदबदा रहा प्रतीत होता है। ऐसे समय बुद्ध का मध्यम मार्ग अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

१०. ध्यान युक्त साक्षीभाव

बुद्ध विचार में अंतर्मुख और ध्यानस्थ होने का बड़ा महत्त्व है। आदमी के आंतरिक विकास के लिए यह जरूरी माना जाता है। रोज-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बरोज की हायतोबा सर्वथा बहिर्मुखी होती है। फलतः सन्तुलन डग-मगाता है। सन्तुलन प्राप्त करने के लिए अन्तर में झाँकना और शान्त हो जाना जरूरी है। एक सोरठी भक्त कवि ने गाया है :

मनडां रंगाणाविना	(मन रंगाये बिना)
भगति न भावे रे	(भगती अच्छी नहीं लगती)
भीतर भेदाणां बिना	(भीतर भेदन किये बिना)
समाधि न लागे रे।	(समाधि नहीं लगती)

गत वर्ष एडमंटन (कैनेडा) में आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् में मैंने योग के मनोवैज्ञानिक आयामों पर एक निबन्ध (पेपर) प्रस्तुत किया था। मेरा प्रवचन पूरा होने पर एक युवती ने मुझसे पूछा, 'ध्यान माने क्या ?' मुझे तत्क्षण जो जवाब सूझा वह इस प्रकार था, "ध्यान माने मन की मोटरगाड़ी को न्यूट्रल गीयर में रखना" (मेडिटेशन इज पुटिंग द मेण्टल कार इन न्यूट्रल गीयर)। ऐसा तभी हो सकता है जब किसी भी प्रकार की मानसिक और सांवेगिक लागलपेट बिना हम संसार की लीला को साक्षी-भाव से देख सकें। ट्राफिक का अवलोकन करना हो तो ट्राफिक सर्किल पर या फुटपाथ पर खड़े रहना पड़ेगा। नदी के प्रवाह को निरखना हो तो किनारे पर खड़े रहना पड़ेगा अर्थात् तटस्थ बनना पड़ेगा। मार्शल मकलुहान ने एक बार प्रश्न पूछा कि "पानी की शोध किसने की" फिर उन्होंने स्वयं ही उत्तर भी दिया कि "इतना तो निश्चित है कि पानी की शोध मछली ने नहीं की होगी।" पानी को साक्षीभाव से देखना मछली के लिए सम्भव नहीं है। कारण यह कि मछली जलमय है। हम जब तक जगत को लीला (द पासिंग शो) के रूप में नहीं देख सकते, तब तक परिस्थिति का तटस्थ अवलोकन नहीं कर सकते। जो भी परिस्थिति बनती है वह उनके कर्मों की उपज है ऐसा साधक समझते हैं अतः परिस्थिति के प्रति उनका प्रतिभाव सन्तुलित और विवेकयुक्त होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विज्ञान का विकास, आबादी की वृद्धि और नगर जीवन आदमी को अधिकाधिक बहिमुख बनाते हैं और ऐसी परिस्थिति में अन्दर झाँकने की बात महत्त्व की है। रोज की चूहादौड़ (रैट रेस), प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण जीवन-शैली, पैसे के पीछे अन्धी दौड़ और मानसिक तनाव में फँसा, आदमी मानो कोन्वेयर-बेल्ट पर बहते पदार्थ जैसा बन जाता है, ऐसी स्थिति है। ध्यान की अवधि में घड़ीभर ठहर कर वह अपने आप से दोस्ती के लिए चिन्तन करे यह जरूरी है। आसपास की अशान्ति के बीच भी उसे शान्ति के एक टापू की रचना करनी है। सारी भाग दौड़ के बीच भी एकान्त का एक कोया (कोकून) उसे बुनना है। अपने अन्तर में झाँके बिना इनमें से कुछ भी सम्भव नहीं है।

११. आध्यात्म की यात्रा—एकाकी यात्रा

भगवान बुद्ध ने कहा, 'तुम्हारी मुक्ति के लिए तुम्हें ही प्रयास करना होगा।' बौद्ध विचारधारा सत्य के प्रति आदमी की अन्तःस्फुरणा से ऊपर दूसरे किसी प्रमाण को स्वीकार नहीं करती। कर्म के विधान के अनुसार प्रत्येक आदमी अपने कर्म का परिणाम भोगता है और उस परिणाम से उसे बुद्ध भगवान से की गयी प्रार्थना भी नहीं छुड़ा सकती। कार्य-कारण शृङ्खला से आदमी को तथाकथित भगवान या गुरु बचा नहीं सकते। बौद्ध साधु उदाहरण प्रस्तुत करने वाले शिक्षक हैं। वे अन्तिम वास्तविकता और व्यक्ति के बीच के दलाल या गुरु नहीं हैं। अन्य धर्मों के प्रति और अन्य विचारधाराओं के प्रति संपूर्ण सहिष्णुता जरूरी है क्योंकि बुद्ध विचारधारा एक बात पर जोर देती है और वह यह कि अन्तिम वास्तविकता की ओर की यात्रा में किसी और को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। आध्यात्म-यात्रा एकाकी यात्रा है और उस यात्रा में सच्चा मार्ग दर्शन अन्तःस्फुरणा प्रदान करती है। आत्म-दीप होने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह भावना भोगीलाल गांधी की इन काव्य पंक्तियों में स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है :—

तू तारा दिलनो दीवो थाने ओरे ओरे ओ भाया
(तू अपने दिल का दीपक बन न ओरे ओ भैया)
रखे कदी तुं उछीना लेता पारका तेज ने छाया;
(तू कदापि उधार मत लेना, पराये तेज और छाया)
ए रे उछीना खूटी जशे ने उडी जशे पडछाया
(अरे उधार के खर्च हो जायेंगे और उड़ जायँगी परछाईयाँ)
कोडियुं तारू काची माटीनुं; तेल दिवेल छुपायां
(दीपक तेरा कच्ची मिट्टी का; तेल बाती छिपे हैं)
नानीशी सली अडी न अडी प्रगट शे रंगमाया !
(छोटी सी सलाई छुई न छुई प्रगटेगी रंगमाया)
आभ मां सूरज चन्द्र ने तारा; मोटा मोटा तेजराया
(नभ में सूरज चन्दे तारे; बड़े बड़े तेजोपुञ्ज)
आतम नो तारो दीवो पेटाववा तुं विण सर्व पराया
(आत्मा का तेरा दीप जलाने, तेरे अलावा सब पराये)

बौद्ध विचारधारा की खूबी यह है कि अपनी जीवन साधना के लिए साधक (बोधिसत्व) गुरु या भगवान को आधार न बनाकर अपने पुरुषार्थ को आधार बनाता है। प्रत्येक जीव को निर्वाण का अधिकार है और उसे अपने प्रयत्न से उसे प्राप्त करना है। इसके लिए किसी की कृपा की जरूरत नहीं है। आत्मश्रद्धा और स्वावलम्बन की ऐसी खनक अन्धश्रद्धा और अश्रद्धा के बीच अकुलाती, आज की दुनियाँ में नया प्रकाश फैलाने वाली बने, ऐसी है। ईश्वर के प्रति मूलभूत रूप से तीन प्रकार के अभिगम उपलब्ध होते हैं :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. ईश्वर जैसा कुछ नहीं है (नास्तिकता–एथीज्म)

२. ईश्वर या परम तत्त्व की बाबत हमें कुछ भी खबर नहीं है, न मिल सकती है। (अज्ञेयवाद–एग्नास्टिसिज्म)

३. ईश्वर है इसमें कोई सन्देह नहीं है। (आस्तिकता–थीइज्म्)

बुद्ध की खूबी यह है कि नास्तिक, अज्ञेयवादी और आस्तिक तीनों उनके विचारों की ओर आकर्षित होते हैं। बुद्ध ने भगवान की, आत्मा की, वेद की या गुरु की बात कहीं नहीं की है और इसी कारण उन्हें नास्तिक करार दिया गया। ब्राह्मणों में पैठी सड़न के विरुद्ध और धर्म में पैठे अनिष्टों के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठायी और सच्चा ब्राह्मण कौन है इसकी धम्मपद में लम्बी चर्चा की। परम तत्त्व या अन्तिम वास्तविकता पर उन्होंने जो बल दिया उसके कारण हिन्दू विचारधारा में भी वे आदर के पात्र माने गये और वह भी यहाँ तक कि उन्हें 'नौवें अवतार' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। इस प्रकार बुद्ध की विचार-धारा में समन्वय की ताकत विद्यमान है। आज की त्रस्त दुनियाँ में पूर्व और पश्चिम के बीच, पुराने और नये मूल्यों के बीच तथा अभाव और अतिशयता के बीच का समन्वय झंखता है। बुद्ध के जीवन-दर्शन में ऐसे समन्वय की संभावना निहित दिखायी पड़ती है। आज के आदमी का रुख व्यक्तिवाद (इण्डिविजुअलिज्म्) की ओर है। आज के व्यक्ति-वादी दृष्टिकोणों के संदर्भों में भी बुद्ध की बात आसानी से स्वीकार्य बने ऐसी है। अपना निर्वाण अपने हाथ में है यह बात व्यक्तिवादी (इण्डि-विजुअलिस्ट) लोगों के गले उतर सकने लायक है। यहाँ श्रद्धा का स्थान एकदम शुष्क, निमर्म और कभी-कभी अव्यक्तिकृत (डीपर्सन-लाइज्ड) अश्रद्धा नहीं ले लेती। अकेली टोली (द लोनली–क्राउड) के सदस्य जैसा आज का आदमी अन्दर से जब एक प्रकार का खोखलापन अनुभव करता है तब ऐसी आत्मश्रद्धा ही उसे बचा सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२. मानव केन्द्रित जीवनदृष्टि

दुख का विश्लेषण करनेवाली बौद्ध विचारधारा निराशावादी नहीं है और पलायनवादी भी नहीं है। इसमें भगवान का इनकार नहीं है और आत्मा का अनादर भी नहीं है। उसकी 'स्व' की भिन्न परिभाषा है, यह सत्य है, पर खण्डन में उसे रुचि नहीं है। वह एक विचारसारिणी है, आध्यात्म का विज्ञान है, धर्म है और जीवनमार्ग है जो तर्क-गम्य है। लगभग दो हजार वर्षों से दुनियाँ की तृतीयांश आबादी की आध्यात्म तृषा यह धर्म बुझाता रहा है। पश्चिम के देशों में इसके प्रति आकर्षण रहा है, क्योंकि यह रूढ़िग्रस्त नहीं है, बुद्धि और श्रद्धा दोनों को संतोष देने और आत्म-श्रद्धा पर बल देने के साथ ही यह अन्य मतों के प्रति सहिष्णुता दिखानेवाला है। पुनः इस विचारधारा में विज्ञान, धर्म, दर्शनशास्त्र (फिलासफी), नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान और कला के उत्तम तत्त्व प्रतिबिम्बित होते देखे जा सकते हैं। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण खूबी यह है कि इसमें मानव को केन्द्रीयता (सेण्ट्रालिटी) प्राप्त होती है और मानवता का समादर होता दिखाई पड़ता है। मानव स्वयं अपनी आज की परिस्थिति का सर्जक है और उसके भविष्य का निर्माता है यह बात महत्त्वपूर्ण है। इस देश में कितने ही वृक्ष (उदाहरण के लिए अश्वत्थ) पवित्र माने जाते हैं, कितनी ही नदियाँ पवित्र मानी जाती हैं, कितने ही पर्वत पवित्र माने जाते हैं, अनेक जानवर पवित्र माने जाते हैं, अनेक पुस्तकें पवित्र मानी जाती हैं और पत्थर तक पवित्र माने गये हैं पर मानव में पवित्रता का आरोपण नहीं हुआ। अस्पृश्यता इसका दुखद उदाहरण गिना जा सकता है। बौद्ध विचारधारा में विद्यमान मानव-केन्द्रिता सभी का मन छू ले ऐसी है। करुणामूर्ति बुद्ध के प्रति आकर्षण, उनकी विभूतिमत्ता के प्रति आदर बढ़ता ही रहा है, इसका रहस्य इस मानव-केन्द्रिता में ही निहित है। करुणा की नींव में प्रज्ञा न हो तो! माता की करुणा बालक की ओर प्रवाहित होती है पर वह प्रज्ञावान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं होती। बालक रोता है तो माता चाकलेट दे देती है। करुणा-विहीन प्रज्ञा प्रज्ज्वलित करती है और प्रज्ञाविहीन करुणा डुबाती है। बुद्ध की करुणा परमहंस की निरपवाद करुणा है। मैं बुद्ध के लिए 'परम-हंस' शब्द जानबूझ कर प्रयुक्त कर रहा हूँ। सहस्रनाम भाष्य में 'हंस' शब्द की व्युत्पत्ति 'अहं सः' (आई ऐम ही) की गयी है। जिसे प्रत्येक जीव के साथ एकत्व का अनुभव हो उसे 'परमहंस' कहते हैं। बुद्ध की करुणा के मूल ऐसी ही परम एकता की अनुभूति में निहित हैं। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोहत्या : बुद्ध से विनोबा तक

कुछ वर्ष पूर्व गोहत्या रोकने के लिए विनोबाजी ने आमरण अनशन आरम्भ किया था और उनके अनुयायियों ने बूचड़खानों के सामने सत्याग्रह भी किया था। गाय की रक्षा का प्रश्न केवल धार्मिक नहीं रहा है। उसके आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, आहारशास्त्रीय और संतुलन-शास्त्रीय (इकोलाजिकल) पक्ष भी विचारणीय हैं। गाय का प्रश्न केवल धार्मिक या केवल हिन्दुओं का प्रश्न बन जाय तब उसका वैज्ञानिक सन्दर्भ विचार की परिधि से बाहर हो जाता है। गाय के नाम पर साम्प्रदायिक दंगा होता है तब आदमी को गाय से भी नीची श्रेणी प्राप्त होती है। शाकाहार अब अन्तर्राष्ट्रीय विषय बन गया है। आज तीस लाख के करीब अमेरिकन शाकाहारी हैं और ये आँकड़े धीमी पर निश्चित गति से बढ़ते जाते है। भगवान् बुद्ध के समकालीन गणितज्ञ और तत्त्वज्ञ पायथागोरस ने उस युग में यूनान में शाकाहार का प्रचार किया था। विनोबाजी ने भी गोहत्या को विश्व-सन्दर्भ में देखने का प्रयत्न किया था।

भगवान् बुद्ध ने गाय के बारे में क्या विचार किया इसकी चर्चा करने से पहले कुछ तथ्यों पर विचार कर लें। यों तो किसी भी प्राणी की हत्या टालने लायक बात है और स्वयं को इन्सान कहलानेवाले सभी लोगों को इस बारे में सोचना चाहिये। नास्तिक आदमी को भी ऐसी वृत्ति शोभा देगी ? सच बात तो यह है कि मानवों पर अत्याचार करने में आस्तिकों ने नास्तिकों को कहीं पीछे छोड़ दिया है। गाय के साथ बैल का अस्तित्व भी जुड़ा है और उसकी रक्षा भी आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। आज शेर को अभयदान मिला है, पर गाय-भैंस को नहीं मिला है ! ऐसा अभयदान यदि सभी पशु-पक्षियों को मिले तो आदमी को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी मिल जायगा। वर्षों पहले अलबर्ट आईन्स्टाइन ने सर सी० वी० रमन को एक सन्देश भेजा था जिसमें ट्रैक्टर के फेर में न पड़कर बैल से चिपटे रहने की सलाह दी गयी थी। गोबर गैस का ऊर्जा-संकट के सन्दर्भ में बहुत महत्त्व हो गया है। अब गोबर गैस एशिया तथा अफ्रीका के देशों में भी पहुँची है। अमेरिका में वह नहीं पहुँची है क्योंकि दुनिया की छः प्रतिशत आबादी धारण करता यह देश दुनियाँ की कुल ऊर्जा का छत्तीस प्रतिशत खर्च कर डालता है। इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी (आई० आई० टी०) कानपुर के पदवीदान-समारोह में प्रवचन करते समय अणुशक्ति पंच के अध्यक्ष डॉ० सेठना ने तो यहाँ तक कह डाला कि एक ओर जहाँ भारत को अणु-रियेक्टर चाहिए वहीं दूसरी ओर गोबर गैस भी चाहिए।

गो-हत्या के विरुद्ध आवाज उठाने का इजारा केवल हिन्दुओं का नहीं है यह समझने के लिए इतना जान लेना होगा कि अतीत में हिन्दू क्या ब्राह्मण तक गोमांस खाते थे (आज भी खाते हैं, पर परदेश में)। बम्बई के विद्वान् सालिसिटर श्री एस० ए० सबनिस ने 'कालिदास' पर की गयी गहन-शोध में राजा रन्तिदेव की बात कही है। वे चन्द्रवंशी थे और राजा भरत के बाद छठे राजा थे। उस समय गोहत्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, इतना ही नहीं, गोमांस खाने की महिमा थी। राजा रन्तिदेव के रसोईघर में नित्य हजारों जानवरों का वध होता था। यह हत्या या तो बलि चढ़ाने के लिए या फिर गरीबों को अन्न देने के लिए की जाती थी। कहते हैं कि ब्राह्मणों और मेहमानों को खिलाने के लिए इतने अधिक जानवरों की हत्या होती थी इसकी कल्पना करना भी मुश्किल होगा। रन्तिदेव द्वारा किये गये यज्ञों में पास की नदी का किनारा बलि की गयी गायों के चमड़ों से पट गया। अस्तु, इस नदी का नाम 'चर्मण्वती' हो गया, पुराण युग की चर्मण्वती नदी ही आज की चंबल है। यह बात श्री सबनिस ने द्रोणपर्व, वनपर्व, शान्तिपर्व, विष्णुपुराण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और मेघदूत के हवाले देते हुए कही है। संक्षेप में गाय का प्रश्न हिन्दुत्व के साथ जोड़ने का प्रयास छोड़ देना चाहिये। अब बुद्ध गाय की बाबत क्या सोचते थे यह देख लें।

बहुत से लोगों के मन में बुद्ध-धर्म पालन करनेवाले देशों के लोकाचार के कारण ऐसा ख्याल है कि बौद्धधर्मी गोमांसभक्षी होते हैं और इस धर्म में गोमांस खाना पश्चिमी सभ्यता या यवनों के आक्रमण के बाद शुरू हुआ। सच बात तो यह है कि ईसा-पूर्व छठी सदी के वाद अर्थात् बुद्ध और महावीर के बाद ही गोहत्या की बाबत सच्चा निषेध शुरू हुआ। बुद्ध की करुणा और महावीर की अहिंसा ने इस निषेध को पूरा समर्थन दिया। वुद्ध ने कहा, "दण्ड से सब लोग डरते हैं, मृत्यु से सब भयभीत हो जाते हैं। दूसरों को भी अपने जैसा समझकर मारना नहीं चाहिए या उनकी हत्या नहीं करनी चाहिये।" गाय के बारे में बुद्ध के स्पष्ट विचारों का वास्तविक ध्यान हमें 'ब्राह्मण धम्मियसुत्त' में मिलता है। एक बार भगवान् वुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के जेतवन में विहार कर रहे थे तब कोसल के वृद्ध ब्राह्मण उनसे मिलने आये। उन ब्राह्मणों से बात करते हुए भगवान बुद्ध ने कहा, "जैसे हमारे माता-पिता और बन्धु होते हैं उसी प्रकार गाय भी हमारी परम मित्र है जिसके द्वारा औषधि (अन्न) पैदा होती है।" फिर वास्तविक ऋषियों (ब्राह्मणों) की महिमा बखानकर बुद्ध ने कहा, "वह (गाय) अन्न, बल, रूप और सुख देनेवाली है इससे वे (वास्तविक ब्राह्मण) गाय को नहीं मारते। जब तक ब्राह्मण सुकुमार और यशस्वी थे तब तक प्रजा सुख से रही। फिर धीरे-धीरे उनका लोभ बढ़ा। फिर वे मन्त्र रचकर इक्ष्वाकु के पास गये। 'तू बहुत धनवान् है, यज्ञ कर' ऐसा कहा। उन ब्राह्मणों के कहने से स्थपति ने अश्वमेध, पुरुषमेध, वाजपेय, निरर्गल (सर्वमेध) यज्ञ करके ब्राह्मणों को धन दिया। लोभ में डूबे ब्राह्मणों की तृष्णा आगे बढ़ी। वे पुनः इक्ष्वाकु के पास गये और बोले, 'जैसे पानी, पृथ्वी, सोना, धन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धान्य है उसी प्रकार गाय भी मनुष्य के उपयोग के लिए है। तेरे पास बहुत सम्पत्ति है। अस्तु, यज्ञ कर।' ब्राह्मणों की बात में आकर राजा ने यज्ञ किया, जिसमें हजार गायों की बलि दी गयी। पहले तीन ही रोग थे, इच्छा, भूख और बुढ़ापा। पशु-वध करने से रोगों की यह संख्या अठ्ठावन तक पहुँच गयी।" भगवान् बुद्ध की यह बात सुनकर वे ब्राह्मण इतने प्रभावित हुए कि वे सब भिक्षु-संघ में शामिल हो गये।

बर्मा जैसे बौद्धधर्मी देश में भी गोहत्या रोकने के प्रयत्न हुए हैं। वहाँ का एक राजा तो गोहत्या करनेवाले की छाती पर हथौड़े मारकर मौत की सजा देता था। महास्थविर लेडी सपाडो ने भी गोहत्या रोकने के प्रयत्न किये थे। यहाँ मैं बता दूँ कि 'ब्राह्मण धम्मिसुत्त' पुस्तक भी मुझे कुशिनारा में वहाँ रहनेवाले एक युवा बर्मी बौद्ध भिक्षु ने ही दी थी। बुद्ध ने तो यहाँ तक कहा, "यदि पशुओं को मारकर अग्निहोम करने से स्वर्ग जाया जा सकता हो तो यजमान अपने पिता आदि को मारकर स्वर्ग क्यों न जाय?" ऐसा भी ज्ञात होता है कि बुद्ध के परिनिर्वाण के सैकड़ों वर्ष बाद भी उनके अनुयायियों ने गोहत्या रोकने का प्रयास किया था। विजयपुर के राजा सीहसुर के प्रधानमन्त्री महाचतुर गव ने सन् १३५२ में गोमांस पर प्रतिबन्ध लगाया था। उन्होंने कहा था कि जो गाय का मांस खाता है वह अपनी माता का मांस खाता है। उन्होंने बैलों की भी उपेक्षा नहीं की थी। गोमेध में गाय और बैल हजारों की संख्या में मारे जाते थे। इसीसे उन्होंने पालि भाषा में एक श्लोक में कहा, "बैल ही सभी गृहस्थों के भोगदाता और पोषक हैं। अस्तु, उन्हें (गाय-बैल को) माता-पिता के समान मानना चाहिये।" इस प्रकार गाय के बारे में बौद्धधर्म का दृष्टिकोण हिन्दू-धर्म से भी ज्यादा स्पष्ट और करुणापूर्ण माना जा सकता है। जैन-धर्म का झुकाव तो सभी जीवों के बारे में इतना अहिंसापूर्ण है कि स्पष्ट करने की भी जरूरत नहीं रहती। मेरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो विनम्र पर दृढ़ मत है कि दुनिया कच्छप गति से संपूर्ण शाकाहार की ओर बढ़ रही है।

दुनिया के सभी देशों में प्राणियों के प्रति और पक्षियों के प्रति क्रूरतापूर्ण आचरण करने के विरुद्ध संस्थाएं बनी हैं। अफ्रीका के जंगलों में प्रतिबंध के बावजूद मगर, हाथी तथा अन्य प्राणियों का व्यापक संहार हो रहा है। मैं थाईलैण्ड गया था तब मगरों का फार्म देखने का अवसर मिला। यहाँ हजारों मगरों का पोषण होता है। पास के रेस्त्रां में मैं सूखा भात खा रहा था और सामने बैठकर एक आदमी मगर का सूप पी रहा था। इंग्लैण्ड में 'रायल सोसायटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ बर्डस्' पक्षियों के शिकार या उनकी हत्या के विरुद्ध संघर्ष चला रही है। कैनेडा और अमेरिका में 'ग्रीन पीस' नामक संस्था ह्वेल मछली के निर्दय शिकार के विरुद्ध दुनियाभर के देशों में जाकर अहिंसक प्रतिकार करती है। इस संस्था के स्वयंसेवक, शिकारियों और ह्वेल मछली के बीच खड़े रहकर कहते हैं, "पहले मुझे मारो, फिर ह्वेल को"। ऐसे स्वयंसेवकों और संस्था के सदस्यों में से अधिकतर लोग शाकाहारी होते हैं। परदेश के अनेक बौद्ध साधुओं से मैं मिला हूँ, जो मांसाहारी थे। कहते हैं कि बुद्ध स्वयं भी मांसाहारी थे। महावीर की अहिंसा ने गाय पर ही न अटककर जीवमात्र के लिए अपना विस्तार किया था। भारत से बन्दरों का निर्यात मोरारजी भाई ने बन्द कराया था। वह अब फिर से शुरू हो गया है। पशुओं और पक्षियों के सामूहिक कत्ल के कारण प्रकृति का संतुलन (इकोलाजी) बिगड़ा है। इकोलाजी शब्द मूलतः यूनानी शब्द 'ओइकस' से निकला है। ओइकस का अर्थ है 'परिवार'। 'इकोलाजी' माने 'परिवार के सम्बन्धों का शास्त्र'। संस्कृत में 'ओकस' माने 'घर'। यह ओकस और यूनानी 'ओइकस' के बीच पुराना सम्बन्ध दिखायी देता है। इकोलाजी हमारी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को वैज्ञानिक आधार पर स्थापित करने का शास्त्र है। रूस की सरकार ने कुछ वर्षों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्व एक प्रकार की सफेद चींटियों को दवा छिड़ककर मारना बन्द किया। कारण यह कि ऐसा करने से साइबेरिया में घास का उत्पादन घट गया। इसी प्रकार चीन में गौरय्या मार डालने के अभियान के कारण निरन्तर अकाल पड़ने लगे। इससे विज्ञान अब यह बात स्वीकार करने लगा है कि प्रत्येक जीव-जन्तु प्रकृति की योजना में संतुलन की दृष्टि से कोई न कोई भूमिका निभाता है। महात्मा गांधी ने गाय को 'करुणा का काव्य' (पोयम ऑफ पिटी) कहकर गाय के संवर्द्धन और संगोपन (पालन पोषण) पर बहुत बल दिया था। केवल दयाभाव से नहीं, बल्कि व्यापक स्वार्थ की दृष्टि से भी हमें पशु-पक्षियों के जीवित रहने के मूलभूत हक को स्वीकार करना पड़ेगा। ऐसा करना हमारे अपने ही दीर्घकालीन व्यापक हित में होगा। ऐसे व्यापक स्वार्थ में बुद्ध की करुणा और महावीर की अहिंसा भले अनायास मिल जायें। विनोबा का गाय-प्रेम ऐसी ही व्यापक और विज्ञानपूत कल्याण-भावना से ओतप्रोत था। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्ध, अस्पृश्यता और धर्मान्तर

तथाकथित शूद्रों की ओर से भारतवर्ष को सर्वोत्तम उपहार मिले हैं। वाल्मीकि (धनुषधारी लुटेरा) की ओर से हमें रामायण प्राप्त हुई। व्यास की ओर से हमें महाभारत और उसके नवनीत समान गीता मिली। अन्त में इस सदी में डॉ० अम्बेडकर की ओर से हमें भारत का संविधान मिला। इस संदर्भ में अस्पृश्यता और हरिजनों के धर्मान्तरण का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। डॉ० अम्बेडकर के शब्द समझने योग्य हैं :—

"हिन्दू-धर्म एक ऐसी इमारत के समान है जिसकी हर जाति उसकी मंजिल-सी है, पर इमारत में एक मंजिल से दूसरे पर जाने के लिये सीढ़ी नहीं है। जिस मंजिल पर जो पैदा होता है, उसे उसी मंजिल पर मरना होता है। नीचे की मंजिल का मनुष्य कितना ही लायक क्यों न हो पर उसे ऊपर की मंजिल में प्रवेश नहीं मिलता और ऊपर की मंजिल का आदमी कितना भी नालायक क्यों न हो पर उसे नीचे की मंजिल पर भेजना संभव नहीं है। अस्पृश्यता एक प्रकार की दासता है। अस्पृश्यता से केवल अस्पृश्यों को ही नुकसान हुआ है ऐसा नहीं है, उसके साथ ही सवर्णों का और देश का भी खूब नुकसान हुआ है। अस्पृश्यता के गर्त से निकलकर उन्हें व्यक्ति-स्वातंत्र्य प्राप्त होगा तो वे अपनी उन्नति करेंगे। केवल इतना ही नहीं, पर वे अपने पराक्रम से, बुद्धि से देश की समृद्धि में अपना अंशदान करेंगे।"

गहन विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सामूहिक स्तर पर होनेवाला धर्मान्तर धर्म का नहीं, बल्कि धर्म के शव की फेरबदल के अल.वा और कुछ नहीं होता। ऐसे धर्मान्तर में विचार-तत्त्व के स्थान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर प्रचार-तत्त्व का बोलबाला होता है। धर्मान्तर करानेवालों और उसका विरोध करनेवालों की मूल श्रद्धा संख्या पर होती है। राजनीतिक कारणों से संख्या का चुनावपरक संबंध होता है; पर धर्म का संख्या के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है ? क्या किसी नदी का मूल्य हम उसमें तैरती मछलियों की संख्या से आँकेंगे ? धर्मान्तर एक व्यक्तिगत विषय माना जाना चाहिए। हमारे युग में दो महानुभावों ने हिन्दू-धर्म छोड़कर बुद्ध की शरण ली। एक थे धर्मानन्द कोसाम्बी और दूसरे थे डॉ० अम्बेडकर। एक थे ब्राह्मण और दूसरे थे (तथाकथित) शूद्र।

धर्मानन्द कोसाम्बी मूलतः महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। बचपन में बुद्ध भगवान् के विषय में मराठी में कुछ पढ़कर उनके प्रति इतने आकर्षित हुए कि उसी समय मन से बुद्ध की शरण स्वीकार कर ली। फिर तो अनेक जोखिम उठाकर वे नेपाल, ब्रह्मदेश और लंका गये और अनेक साधुओं की प्रणिपातपूर्वक सेवा की और अनेक भाषाएँ सीखकर पालि पर भी अधिकार प्राप्त किया और संसार के बौद्ध पंडितों में स्थान प्राप्त किया। स्वयं वैदिक धर्म त्यागकर बौद्ध बने, लेकिन मशरूवाला कहते हैं कि धर्मान्तर ने उन्हें विवेकशून्य नहीं बनाया। डॉ० अम्बेडकर का धर्मान्तर भी बहुत सोच-विचार के बाद लिया गया बुद्धियुक्त निर्णय का परिणाम था। हरिजनों को हिन्दुओं से अलग कर देने की अंग्रेजों की योजना थी और गांधीजी ने इसके विरुद्ध उपवास भी किया। डॉ० अम्बेडकर ने उस समय झुक जाने की बात स्वीकार न की होती तो महात्माजी के लिए मृत्यु निश्चित थी। फिर सन् १९३३ की ग्यारहवीं फरवरी को पूना से 'हरिजन' का प्रथम अंक प्रकट हुआ और उसके लिए महात्माजी ने डॉ० अम्बेडकर से सन्देश माँगा। डॉ० अम्बेडकर ने सन्देश नहीं भेजा पर छोटी-सी टिप्पणी लिखी जिसमें भारी मात्रा में कटुता थी। गांधीजी ने यह पत्र 'हरिजन' में छापा और नीचे टिप्पणी लिखी कि पत्र में विद्यमान पीड़ा समझी जा सकती है। हिन्दू नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुधरेंगे ऐसी पूर्ण प्रतीति होने के बाद हार मानकर अम्बेडकर ने धर्मान्तर किया और आखिरी दम पर तो बौद्ध साधु का वेश भी अपना लिया। अम्बेडकर जैसे अत्यन्त प्रतिभावान् आदमी का धर्मान्तर प्रतिक्रियारूप था, तो भी हिन्दुओं की और स्वयं को धर्मरक्षक बताते शंकराचार्यों की आँख नहीं खुली। अभी आज भी हमारे धर्माचार्यों को हरिजनों के अस्तित्व का ख्याल उनका धर्मान्तर होता है तभी आता है। हरिजनों का कत्ल होता है तब धर्माचार्यों का रोंआ भी कम्पित नहीं होता। सच्चिदानन्द जैसे कोई साधुपुरुष इस बाबत क्रांतिकारी दृष्टि अपनाकर शंकराचार्य की गद्दी पर किसी हरिजन को बैठाने की हिमायत करते हैं, इतना आश्वासन अवश्य है।

सामूहिक धर्मान्तर संख्यापरक होने के बावजूद अस्पृश्य के संदर्भ में केवल धार्मिक घटना न रहकर सामाजिक और कुछ अंशों में राजनीतिक घटना बन जाता है। यदि हरिजन धर्मान्तर करें ही तो वे बौद्धधर्मी बनें और डॉ० अम्बेडकर का अनुसरण करें इसमें थोड़ा सयानापन विद्यमान है। बौद्धधर्म की जड़ें इसी धरती में हैं और हिन्दू-विचारधारा के साथ उसका अनुबन्ध बड़ा ही मूल्यवान् है। वर्णभेद और अस्पृश्यता को छोड़कर बाकी हिन्दू जीवन-दर्शन आज के विश्व की बड़ी पूंजी है। प्रजा के रूप में हिन्दुओं की मर्यादा कम नहीं है। भ्रांतिप्रेम और ठाले गौरव के प्रति आकर्षण में और बँटवारे की प्रीति में दुनिया की कोई भी प्रजा हिन्दुओं का मुकाबला नहीं कर सकती। हरिजनों का धैर्य अस्पृश्यता और अत्याचार के कारण टूटे यह समझ में आ सकता है। हिंदू-धर्म में सुधारक तो पैदा हुए, पर सुधारों की गति शिथिल रही। इस बारे में हिन्दुओं ने अपने को 'सनातनी हिन्दू' कहलवानेवाले गांधीजी को भी हरा दिया। यदि आज ऐसी स्थिति है तो आज से २५०० वर्ष पहले कट्टर वर्णभेद कैसा रहा होगा? उसने बुद्ध को कसौटी पर नहीं कसा होगा? कहते हैं कि 'बुद्धू' शब्द 'बुद्ध' से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकला है। ब्राह्मणों ने कम मजाक नहीं किया है। 'लुंचित केश' पर से 'लुच्चा' शब्द बना है। अपने केशों का लुंचन करनेवाले जैन मुनि का यह उपहास था। सूफी सन्तों का मजाक उड़ाते हुए आज भी सयानी बातें करनेवाले को 'सूफियानी बात करनेवाला' कहते हैं। अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाया और वह 'देवानां प्रिय' कहलाया। अशोक का उपहास करने के लिए ब्राह्मणों ने 'देवानां प्रिय' शब्द का अर्थ 'बकरा', 'गँवार', 'मूर्ख' आदि किया। फिर लोग ब्राह्मणों को छोड़ देते क्या? वेद पढ़नेवाले को नरसिंह मेहता ने 'रात रहे ज्यारे पाछली षट घड़ी" में 'वेदिया होय तेणे संभारवा' लिखा। पर लोगों ने खाली-ठाले बैठे कचकच या चख-चख करनेवाले के लिए 'वेदिया' शब्द का प्रयोग करना आरंभ कर दिया।

भगवान् बुद्ध ने उस जमाने में अनेक अपमान, अवरोध और मुश्किलें झेलकर भी वर्णभेद को स्वीकार नहीं किया। उनके संघ में चुन्द लोहार को, उपालि नाऊ को तथा आंबपाली (आम्रपाली) जैसी गणिका को स्थान मिला। बुद्ध की करुणा सूक्ष्म, व्यापक और निरपवाद प्रतीत होती है—वर्षा की जलधार-सी। भेदभाव का उसमें स्थान नहीं है। करुणा से छलछलाती ऐसी आँखें संसार को बार-बार नहीं मिलतीं। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दू-धर्म और बुद्ध

भगवान् बुद्ध जन्मना हिन्दू थे और उस युग में वैदिक धर्म में जो सड़न पैठ गयी थी उसे साफ करने हेतु वे जीवनभर चेष्टा करते रहे। उन्होंने जनसाधारण को **'सच्चा ब्राह्मण'** कैसे बनना यह सिखाया। धम्मपद के २६वें प्रकरण में 'ब्राह्मण वग्गो' है जिसमें बुद्ध ने सच्चे ब्राह्मण के लक्षणों का वर्णन किया है। हिन्दुओं ने वुद्ध को नवें अवतार के रूप में स्वीकार किया है। हिन्दू-धर्म की सड़ान साफ करने का बुद्ध ने प्रयास किया। पर कालक्रम में बौद्धधर्म में भी सड़ान पैदा हो गयी। संसार का कोई भी धर्म आज अन्धश्रद्धा, वहम, जड़ता और गतानुगतता से मुक्त नहीं है।

बौद्ध-विचारधारा और हिन्दू-जीवन-दर्शन के बीच का अनुबन्ध बौद्ध परम्परा में जिसे 'ब्रह्म-विहार' कहते हैं, उसमें देखा जा सकता है। 'ब्रह्म-विहार' के चार स्तम्भ हैं—

१. मैत्री २. करुणा ३. मुदिता ५. उपेक्षा

पहले मैत्री पर विचार करें। वेद में 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' ऐसा कहकर सभी जीवों के प्रति मैत्री का महत्त्व प्रदर्शित किया है। मैत्री प्रेम का सुफल है। मैत्री की नींव में अद्वैत है। व्यक्तिपरक प्रेम अन्त में व्यक्ति-निरपेक्ष बनकर विश्वव्यापी बन जाता है। बुद्ध को मित्रत्व में अपार श्रद्धा है। अन्त समय में उन्होंने शिष्यों से कोई शंका रह गयी हो पूछ लेने का आग्रह किया। सब शान्त रहे। अन्त में बुद्ध ने कहा, "आप मुझसे मित्र के रूप में तो पूछ ही सकते हैं।" और तब बातचीत शुरू हो गयी। बुद्ध एकमात्र ऐसे महामानव हुए जिन्होंने गाय को भी मित्र कहा। बुद्ध **'कल्याण मित्र'** कहलाते हैं, गुरु नहीं। ऐसी मैत्री की सीमाएँ हो सकती हैं क्या ? वह तो सर्वत्रगा और सर्वदेशीय ही होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा मुद्दा है करुणा। इस बारे में हम चर्चा कर चुके हैं। बुद्ध की करुणा का आधार 'घाट घड़े फिर नाम-रूप दे डालें, अन्त तो हेम का हेम ही होता है' इस पंक्ति में व्यक्त हुई श्रद्धा का है। करुणा के पीछे उपकार नहीं है बल्कि परमहंस की, 'अहंस' (मैं वो हूँ) की भावना भरी है। मैत्री-प्रेम का परिणाम है और यह प्रेम बहता है करुणा की धारा बनकर।

मुदिता माने आनन्द। आनन्द को ऋषियों ने ब्रह्म के साथ जोड़ा है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष की बात करके हमारे ऋषियों ने आनन्द को सर्वोच्च स्थान पर बैठा दिया है। यह ऐसा शब्द है जिसका सही पर्याय किसी अन्य भाषा में मिलना कठिन है। 'सुख' के विरुद्ध दुःख होगा ही ! आनन्द माने मन से परे चेतना की चरम अवस्था।

उपेक्षा माने वैराग्ययुत साक्षीभाव। समता (इक्वेनिमिटी) बिना साक्षीभाव पैदा नहीं होता और साक्षीभाव बिना वैराग्य टिक नहीं सकता। गीता ने असंग की महिमा गायी है। गांधीजी ने तो गीता के लिए अनासक्ति योग शब्द को विचारार्थ प्रस्तुत किया। जीवन में उपेक्षा-युक्त 'थर्ड पर्सननेस' का महत्त्व है। आसक्ति दुःख का मूल है। गीता ने तो 'समत्वं योग उच्यते' कहकर उपेक्षायुक्त समत्व का महत्त्व प्रदर्शित किया है।

बुद्ध द्वारा प्रयोजित शब्दों की सूची बनाये तो तुरन्त समझ में आ जायगा कि उनकी विचारधारा मौलिक होते हुए भी वैदिक परम्परा के कैनवास पर अंकित हुए मनोहर चित्र जैसी है। वैदिक परम्परा के उत्तम अंशों का आदर करके उसमें प्रविष्ट हुई सड़न को साफ करने की बुद्ध ने चेष्टा की। इस हेतु उन्होंने खण्डन और मण्डन दोनों ही प्रस्थापनाएँ स्वीकार कीं। इस प्रकार हिन्दू-जीवन-दर्शन और बौद्ध-विचारधारा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीच का अनुबन्ध स्पष्ट है। फ्रिटजाफ काप्रा जैसे महान् वैज्ञानिक को इन दोनों विचारधाराओं में जो तत्त्वज्ञान निहित है वह चुम्बक की तरह आकर्षित करता है। हिन्दू स्वभावतः अनाक्रमक और सहिष्णु गुणों से युक्त लोग हैं। आरम्भ के विरोध के बाद बुद्ध को अवतार के रूप में स्वीकार करके हिन्दू-धर्म ने कुछ भी खोया नहीं है, बल्कि बहुत कुछ प्राप्त किया है।

स्व० प्रो० आर्नोल्ड टोयन्बी ने भी बौद्ध-धर्म का खूब आदर किया है। मूलतः ईसाई और ईसा के बलिदान को इतिहास को मोड़ देनेवाली घटना प्रमाणित करनेवाले प्रो० टोयन्बी को तथागत की मैत्री और करुणा की भावना स्पर्श कर जाय इसमें नयी बात क्या है। उनकी श्रद्धा के निकट हो ऐसा धर्म है 'जरथोस्ती धर्म'। जीवन को सद्-असद् का संग्राम बतानेवाले इस धर्म से जर्मन दार्शनिक नित्शे भी प्रभावित हुए यह हम जानते हैं। हिन्दू-धर्म के बारे में प्रो० टोयन्बी का अपना मत यहाँ उल्लेख करने का लोभ मैं रोक नहीं सकता।

"मुझे बैप्टाइज किया गया उसके बाद अस्सी वर्षों के दौरान मैं जिस मत में स्थिर हुआ हूँ उसे यथासम्भव प्रामाणिकता, निखालिसता और विशदता से कहने का अब मैं प्रयत्न करता हूँ। इंग्लैण्ड की ईसाई-धर्म-संस्था ने बैप्टिज्म से मुझे विधिवत् अंग्रेज ईसाई-धर्मी बनाया। मैंने इस धर्म-संस्था को कभी नकारा नहीं है। तथापि ये समस्त विधान अंग्रेज धर्म-संस्था के अधिकारीवर्ग का कोई सदस्य पढ़े तो वह तत्काल ही फैसला दे देगा कि मैं उनके धर्म-समाज का सदस्य नहीं हूँ। पर मैं केवल गैरईसाई ही नहीं माना जाऊँगा, बल्कि जो भी उच्चकोटि के धर्म आज जीवित हैं उनमें से अधिकतर मुझे अपनी सदस्यता के लिए अपात्र ही मानेंगे।"

"उच्चकोटि के जो धर्म आज जीवन्त हैं उनमें से जिस एकमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म में मैं प्रवेश करना चाहता हूँ वह है हिन्दू-धर्म। क्योंकि हिन्दू-धर्म विशाल हृदयवाला और सर्वाश्लेषी है। शायद हिन्दू मुझे स्वीकार करें और उसमें मुझे प्रविष्ट होने दें, पर उनकी जातियों की श्रेणी में मैं भंगी से नीचे गिना जाना पसन्द करूँगा।"[1]

---

१. इक्सपीरियेंसेज—पृ० १४५-४६ का अनुवाद, यशवंत शुक्ल, केन्द्र और परिधि, पृ० २३१-३२।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपसंहार

जगत् में सभी धर्मों के बीच अनुबन्ध ढूंढ़ा जा सकता है ऐसा मैं मानता हूँ। जब सरिता सागर से मिलती है तब उसका नाम नदी नहीं रहता। प्रत्येक साधक को देह-मृत्यु से पूर्व 'अहं' की मृत्यु से भेंट करनी पड़ती है। यही है 'आत्ममिथुन'। इसीको शायद सूफियों ने 'दिव्य-लगन' कहा होगा। 'नाथ-साधना' में इसीको 'शिव-शक्ति' का परम-मिलन कहा है। वैष्णव पराभक्ति में इसे ही राधाकृष्ण की शाश्वत एकता कहा होगा। बुद्ध की भाषा में इसे 'निर्वाण' कहा और गीता की भाषा में 'ब्रह्म-निर्वाण'।

दुनियाँ की हालत तो देखिये। उत्तर के मालदार देशों के बीस प्रतिशत लोगों की आमदनी, दुनियाँ की कुल आमदनी की ७५ प्रतिशत है। तीसरे विश्व के गरीब देशों में प्रतिवर्ष जितने बालक मरते हैं उनकी संख्या ब्रिटेन, इटली, स्पेन, फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी में बसते कुल बालकों जितनी है। आज इतने परमाणु अस्त्र खड़क रहे हैं कि दुनियाँ का विनाश कुछ नहीं तो हजार बार तो हो ही सकेगा। फिर एक बार नाश होने के बाद पुनः प्रयत्न करने की कोई सम्भावना नहीं रहेगी। कहते हैं रोम एक दिन में नहीं बना था, यह बात सच है, पर हिरोशिमा तो एक घण्टे में समाप्त हो गया। हमारी प्रगति क्या कोई ऐसी-तैसी है! गरीबी, शोषण, युद्ध, भुखमरी, रोग, निरक्षरता और अज्ञान से त्रस्त और ग्रस्त दुनिया में बुद्ध की करुणा, शान्ति और सुवास फैलानेवाली बन सके यह सम्भव है।

एक बार भगवान् बुद्ध अपने शिष्य आनन्द के साथ बैठे बात कर रहे थे। ऐसे में उनके माथे पर मक्खी बैठी और बात के दौरान आदत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अनुसार तथागत ने हाथ हिलाया और मक्खी को उड़ा दिया, फिर थोड़ी देर बाद पुनः तथागत ने मक्खी उड़ाने हेतु हाथ हिलाया पर उस समय उनके मस्तक पर मक्खी नहीं बैठी थी। आनन्द यह देखकर विचारमग्न हो गया। आश्चर्य व्यक्त करते हुए उसने पूछा, "भगवन्, मुझे समझ में नहीं आया। पहली बार आपने सहज रूप से अनायास मक्खी उड़ा दी, पर दूसरी बार तो मक्खी बैठी न थी तो भी सचेत भाव से उसे उड़ाने को आपने हाथ हिलाया।" भगवान् बुद्ध ने हल्का-सा स्मित बिखेरते हुए कहा, "आनन्द, पहली बार मैंने किसी भी प्रकार की जागरूकता (अवेयरनेस) बिना मक्खी उड़ा दी थी। दूसरी बार मक्खी नहीं थी पर मैंने जागरूकतापूर्वक हाथ हिलाया। तू एक बात समझ ले। सिद्धार्थ को जागरूकता बिना कुछ भी करना पोसा सकता है, बुद्ध को नहीं।"

धर्म प्रतिपल जागरूकता की माँग करता है। जो प्रबुद्ध हैं, ऐसे लोगों को 'जागते नर' कहा गया है। पानी की बूंदों को भाग्यवश ही खबर होगी कि उनके अस्तित्व की परिसमाप्ति महासागर में ही हो सकती है। दीपक की ज्योति है तो छोटी पर उसका सम्बन्ध है सूर्य के साथ। आदमी चाहे कैसा भी क्यों न हो पर उसके अस्तित्व की अन्तिम शोध तो अन्तिम वास्तविकता, परमात्मा या परम सत्य के साथ ही हो सकती है। कबीर ने ऐसी शोध की बात इस प्रकार की है :

"नूर का महल और नूर की भूमि है
जहाँ आनन्द सो द्वन्द्व भाजे
करता है कल्लोल बहुभाँति से संग यह
हंस सोहंग के जो समाजै"

जहाँ ज्योति के महल और ज्योति की भूमि हो वहाँ के आनन्द में सभी प्रकार के द्वन्द्वों का विलय हो जाता है। वहाँ यह (जीवात्मारूप)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हंस सोहं (परमात्मा) के साथ अभिन्नता का अनुभव करके अनेक ढंग से आनन्द-कल्लोल करता है।

हमें ऐसी परम शोध की, अपने असल खानदान की और अपनी जीवनलय की खबर मिल जाय इसके लिए तथागत की करुणा हम पर बरस सकती है क्या ? जो सिद्धार्थ के लिए सम्भव है वह हमारे लिए असम्भव हो सकता है क्या ? बुद्ध के जीवन का संदेश है कि अपना निर्वाण अपने हाथ में ही है; अपना जन्मसिद्ध अधिकार है, अपना गन्तव्य है। छोटे मुँह बड़ी बातें अपने शान्तिपूर्वक सुन ली हैं, इसके लिए आपका आभार मानता हूँ। हम सबके शरणालय करुणामूर्ति बुद्ध का अनुशासन इस विश्व पर अवतरित हो इस प्रार्थना के साथ विश्राम लेता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट १

जेन-विचारधारा (ध्यान और अन्तःस्फुरणा द्वारा सत्य की शोध)

एक बार किसीने भगवान् बुद्ध को एक सुनहरा पुष्प भेंट करके उपदेश देने की बिनती की। बुद्ध अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक ध्यानमग्न हो पुष्प को देखते रहे। अस्तित्व का रहस्य शब्दों से नहीं बल्कि पुष्प के साथ एक-रूप हो गहरे उतर जाने में हैं ऐसा बोधपाठ सभी को अनायास ही प्राप्त हुआ। यह छोटी-सी घटना 'जेनपन्थ' के प्रारम्भ का निमित्त बन गयी। अनेक विद्वान् मानते हैं कि जेन विचारधारा बौद्धधर्म की सबसे उत्तम कही जा सके ऐसी उपलब्धि है। पाँचवीं सदी के अंतिम चरण में बौद्धधर्म द्वारा जेन-विचार चीन में फैला। ऐसा कहा जाता है कि दीवार की ओर मुँह करके बौद्ध-धर्म ने पूरे नौ वर्ष तक ध्यान किया और किसी के साथ ज्यादा बातचीत नहीं की। बारहवीं सदी में जेन-पन्थ चीन से जापान में प्रसारित हुआ और मध्ययुग के युद्धग्रस्त उत्तराधिकारियों के बहादुर सैनिकों को इस पन्थ में विद्यमान सादगी और सरलता पसन्द आ गयी। आज जापान में नब्बे लाख (साधु तथा अन्य अनुयायी) लोग इस पन्थ में श्रद्धा रखते हैं और संख्या की दृष्टि से यह पन्थ क्रम में दूसरे सोपान पर आता है।

जेनपन्थी मानते हैं कि नियमपूर्वक ध्यान करने से अन्त में बोधि अनायास झमक के रूप में प्राप्त होती है। इसके लिए साधक को लगभग दस वर्ष नियम-पालन करना पड़ता है। जेन गुरु (मास्टर्स) पुस्तकों से दूर रहकर, प्रवचन दिये बिना, चर्चा करना टालकर और सिद्धान्तों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर सिर खपाये बिना, कभी शिष्यों पर जोर से चीखकर, कभी थप्पड़ मारकर, कठिन काम सौंपकर, मन को कसने के लिए पहेलियाँ बनाकर तालीम देते हैं। जेनपन्थी मानते हैं कि नित्यप्रति छोटी-मोटी क्रियाओं में जीवन का रहस्य छिपा है। जेन साधक खेत में काम करते हैं, भिक्षा माँगते हैं, यथासंभव कम खाते हैं और ध्यानमय जीवन जीते हैं। जेन साधकों में चाय बनाने का रिवाज है जिसे 'टी-सेरेमनी' कहते हैं। चाय बनाने की स्थूल क्रिया में भी इस या उस काम के साथ एकरूप होने का संकेत विद्यमान है। मार्टिन बुबर के लिए कहा जाता है कि उन्हें चाय पीते देखना भी एक सुखद अवसर था। वे चाय पीते-पीते अन-करीब चायमय बन जाते थे। जेनपन्थ माने जीवनमय और ध्यानमय बनकर, अन्तःस्फुरणा का अनुसरण कर सत्य की शोध की साधना।

जेनपन्थ के प्रखर विद्वान् तथा संस्कृत और चीनो भाषा के अलावा बौद्ध-धर्म-शास्त्रों के पण्डित डॉ० डी० टी० सुजुकी का सन् १९६६ में जापानी गणनानुसार पञ्चानवे वर्ष की उम्र में अवसान हुआ। कहा जाता है कि उन्हें अपने जीवनकाल के दरमियान बोधि प्राप्त हुई थी। डॉ० सुजुकी के कितने ही लेखों का संग्रह 'द फील्ड आफ जेन' पुस्तक में प्रकाशित हुआ है।

जेन-विचारधारा में चीन के व्यावहारिक मनोविज्ञान और भारतीय दर्शन का समन्वय हुआ है। डॉ० सुजुकी तो कहते हैं कि बुद्ध को समझने के लिए केवल उनके उपदेश पढ़ने से कुछ हाथ नहीं लगेगा। उन्हें जो अनुभूति हुई वह हमें होनी चाहिए। बुद्ध का उपदेश उनकी अनुभूति में से पैदा हुआ था। प्रश्न पूछनेवाला ही प्रश्न पैदा करता है। पूछनेवाला मानता है कि एक बार पूछ लिये जाने के बाद प्रश्न बाह्य-तथ्य बन जाता है। यह बात गलत है। प्रश्न पूछनेवाला और प्रश्न एकरूप बन जायें तभी उत्तर प्राप्त हो सकता है। अन्तिम समाधान तो अन्दर से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त होता है। एक जेन गुरु तो कहते हैं, "बुद्ध के पास मत जाओ। वे हों वहाँ से आगे बढ़ जाओ। मन्दिर में न जाओ और मन्दिर से बाहर भी न रहो। यदि आप अपना मन्दिर साथ लेकर घूम सकें तो फिर अन्दर-बाहर जैसा कुछ भी नहीं रह सकेगा।"

'बोधि' के लिए जापानी शब्द है 'सतोरी' और चीनी शब्द है 'वु'। डॉ० सुजुकी 'प्रज्ञा' और 'विज्ञान' के बीच का भेद समझाते हैं। अन्तः-स्फुरण का प्रज्ञा के साथ और पृथक्करण का विज्ञान के साथ सम्बन्ध होता है। प्रज्ञा सकल वास्तविकताओं के बीच विद्यमान मूलभूत एकता पर बल देती है। विज्ञान में पदार्थ और उसे देखनेवाला ये दोनों अलग होते हैं। दृश्य पदार्थ (आबजेक्ट) और द्रष्टा (सब्जेक्ट), विज्ञान ऐसे दो विभाजन करता है। एक पुष्प को प्रज्ञावान् मनुष्य देखता है तो उसे उसमें अस्तित्व की लीला के संकेत मिलते हैं और पुष्प तथा वह स्वयं एक हैं ऐसा भाव जागता है। वर्डस्वर्थ ने टूटी दीवार पर उगे पुष्प को देखकर कहा था "यदि तू क्या है यह मुझे समझ में आ जाय तो भगवान् क्या है यह समझ में आ जायगा।" एक रूसी कवि ने कहा है कि "आप नदी में स्नान करते हैं तो इसका अर्थ ही है कि आप नदी हैं।" जापानी कवि बाशो यही बात दूसरे ढंग से कहता है, "आप और देवदार का वृक्ष अलग रहें तब तक उसे पा नहीं सकते, आप देवदार बन जायँ तभी ऐसा हो सकता है।" प्रज्ञा का अर्थ है पुष्प को जैसा वह है वैसा पुष्पमय बनकर देखना। पुष्प का पृथक्करण करते हैं तब उससे सम्बद्ध विज्ञान की शुरुआत होती है। विज्ञान कभी अनन्त की शोध नहीं कर सकता। पुष्प को वस्तुलक्षी के ढंग से अर्थात् अलग रहकर देखें तो हम कभी भी पुष्प के अर्थात् कि जीवन के हृदय तक नहीं पहुँच सकते। प्रज्ञा खिलती है, तभी 'मैं ही पुष्प हूँ' ऐसा भाव जगता है। इसे 'बोधि' 'सतोरी' या 'वु' कहा जा सकता है। रोज के घटनामय जीवन में हमारी चेतना सतत बाहरी बातों में ही उलझती रहती है। परिणामस्वरूप बहिर्मुखता का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोझा बढ़ता ही रहता है, अन्दर की दुनिया में झाँकने का, झँपने का और विविध पदार्थों में विद्यमान मूलभूत एकता के बारे में चिन्तन करने का समय ही नहीं रहता। इस प्रकार बाहर की चलफेरी में मन का भ्रमण चलता रहता है और 'स्व' दूर रह जाता है, पराया बना रह जाता है और जीवनभर अपरिचित रह जाता है। जेनपन्थ प्रज्ञा पर बहुत बल देता है। प्रज्ञा अस्तित्व की निखिलता के सहज स्वीकार में निहित है। जेनपन्थ में अपने अस्तित्व का लय, परम अस्तित्व के लय के साथ एक-रूप बन जाय ऐसे ध्यानमय जीवन की महिमा बहुत है। ध्यान माने और कुछ नहीं, ध्यान माने लयप्राप्ति।

एक जेन-कथा में अलग पदार्थ के तौर पर नहीं बल्कि पूरी एकरूपता के साथ प्राप्त करने का निदेश दिया गया है। एक लकड़हारा पर्वत पर गया और जब उसने पेड़ काटना शुरू किया तब सामने की ओर एक अनजाने प्राणी को बैठे देखा। मन ही मन उसने उस प्राणी को मार डालने का विचार किया। तभी उस प्राणी ने उससे कहा, "तू मुझे मार डालना चाहता है।" यह सुनकर लकड़हारा गुस्सा हो गया पर करे क्या, उसकी समझ में नहीं आया। तुरन्त वह प्राणी बोला, "अब तू मेरा क्या करना यह विचार कर रहा है न ?" इस प्रकार जो भी विचार लकड़हारे के मन में उठता वह उस प्राणी तक पहुँच जाता। अन्त में ऊबकर लकड़हारा मन ही मन बोला, "अब मैं प्राणी के बारे में विचार करना छोड़कर पेड़ काटने में ही व्यस्त होऊँगा।" लकड़हारा पेड़ काटने में ज्यों ही एकाग्र हुआ त्योंही कुल्हाड़ी को पंख निकल आये और उसने उड़कर उस प्राणी को मार डाला। जेन गुरु तो कहते हैं कि बोधि के बारे में विचार करते रहना, उसके लिए प्रयत्नशील रहना यह भी बोधि को दूर ढकेलने के बराबर है।

जेन-पन्थ में 'सवाल-जवाब' के लिए एक शब्द है 'मोण्डो'। ध्यान देने की बात यह है कि अनुभूति व्यक्त करने में शब्द पूर्णरूप से मदद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं कर पाते। हमारा मन पूर्वग्रहों, अभिग्रहों, आग्रहों और अभिसंधानों से भरा होता है तब शब्द की मर्यादा बढ़ जाती है। जेन गुरुओं की अंदरूनी मस्ती शब्दों की आश्रित नहीं होती। वे लाचार होकर शब्दों का सहारा लेते हैं पर उसमें लाघव होता है और कभी-कभी प्रस्तुतता या क्रमवद्धता का अभाव भी इस्तेमाल होता है। 'मोण्डो' का सम्वन्ध अनुभूति के साथ होता है और उसे व्यक्त करने में 'शब्द' टुच्चे बन जाते हैं। जेन गुरु (मास्टर्स) आनेवाले को बहुधा ऐसे प्रश्न पूछते हैं :

१. आप कहाँ से आये हैं ?

२. आप कहाँ जायेंगे ?

३. आपका नाम क्या है ?

इन प्रश्नों में 'कहाँ' शब्द का अस्तित्व के उद्भव के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। हम कह देते हैं 'वम्बई से आ रहा हूँ।' ऐसा ही अन्य प्रश्नों के लिए भी कहा जा सकता है। अस्तित्व या हमारा 'होना' (बीइंग) किसी गन्तव्य बिना का हो सकता है। फिर तीसरे प्रश्न में हमारे 'नाम' के वारे में विचार करना है। यह 'नाम' व रूप-भेद की माया के कारण अन्ततः स्वर्ण तो स्वर्ण ही रहेगा वाली आधारभूत अद्वैतमूलक एकता खण्डित होती है। त्रि-परिणामात्मक (थ्री डाइमेन्शनल) अवकाश के पिंजरे का अतिक्रमण करके उड़ने की बात का संकेत छिपा है।

शोबी : तेरा नाम क्या है ?

क्योजोन : यी–जाकु

शोबी : 'यी' माने क्या ? 'जाकु' माने क्या ?

क्योजोन : वह आपके आगे ही है।

शोबी : अभी आगे-पीछे बचा है ?

क्योजोन : हम थोड़ी देर के लिए आगे और पीछे के बीच का सम्बन्ध भूल जायें। हे गुरु, आप क्या देखते हैं ?

शोबी : तूं यह चाय पीना शुरू कर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस 'मोण्डो' का रहस्य डॉ० सुजुकी ने संक्षेप में समझाया है। क्योजोन जेन-साधक है। शोबी जेन-गुरु है। 'यी' का अर्थ है भावातीत सयानापन' (ट्रांसडेण्टल विस्डम) अथवा 'प्रज्ञा' और 'जाकु' माने शान्ति। 'यी-जाकु' माने 'प्रज्ञायुक्त शान्ति'। सच तो यह है कि गुरुओं को शब्द का अर्थ नहीं पूछना चाहिये क्योंकि वे उसे जानते हैं। क्योजोन साधना में कितना अग्रसर हुआ है यह गुरु जानना चाहते हैं। क्योजोन भी कोई नया छात्र नहीं है। वह समझ जाता है कि गुरु का इशारा किस ओर है। इस कारण उत्तर देता है, "आपके आगे ही है।" फिर क्योजोन पूछता है, "हे गुरु, आप क्या देखते हैं।" यहीं सच्चा मर्म छिपा है। जहाँ तक देखने का शेष है, वहाँ तक 'देखनेवाला' और जो दिखता है उसके बीच का द्वन्द्व टला नहीं है। वह जब तक टले नहीं तब तक आगे और पीछे कैसे टल सकते हैं? मोण्डो जब इस कक्षा तक पहुँचता है तो जेन केवल एक विचारशास्त्र बन जाता है। ऐसा होता है तब विचार बच जाता है और जेन नष्ट हो जाता है। ऐसा होने से रोकने के लिए मोण्डो में अचानक पलटा आता है और अन्त भी अकल्पित और नाटकीय दिखता है। इसीसे गुरु ने कहा, "तूं यह चाय पीना शुरू कर।"

जेन वुद्धि-विडम्बना या सापेक्षता की मर्यादाओं से बचने को कहता है। जेन-विचारधारा में 'जागृति के अनुभव' का विशेष महत्त्व है। ऐसा अनुभव मनुष्य को अन्य प्राणियों के बीच विशिष्ट स्थान पर रखता है। ऐसे अनुभव के बाद ही तो चाय का कप 'आगे-पीछे' की ऊहापोह के विना पिया जा सकता है। बुद्धि की मर्यादा शेष होती है तब 'प्रज्ञा' का उदय होता है। संवेदन की पाँच इन्द्रियाँ हम चाहे जितना मन्थन करें तो भी हमें अस्तित्व का मर्म नहीं समझा सकतीं। एक यूनानी कवि ने तो 'नाम माने कैद' ऐसी काव्य-पंक्ति लिखी है। नाम हमें जो निःसीम है उससे अलग हटाकर संकुचितता की मर्यादा में खींच ले जाता है। जो अमाप है, अमर्याद है उसे समझने के लिए मर्यादा में बँधे शब्द भला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खपेंगे क्यां ? विज्ञान माप की प्रतीति करा सकता है, 'अमाप' का अनुभव कराने की उसमें औकात नहीं है। प्रज्ञा और विज्ञान के बीच का विभेद यही है।

जेनपन्थी कहते हैं कि चाँद को बताने के लिए अँगुली की भले ही जरूरत हो पर चाँद को देखने के बाद, अँगुली को तकलीफ देने की जरूरत नहीं होती। चुआंग त्सु इसी बात को अलग ढंग से पेश करते हैं। मछली पकड़ने के लिए जल का प्रयोग करने की जरूरत होती है पर मछली मिल जाने के बाद आदमी जल को भूल जाता है। विचारों की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का प्रयोग होता है पर जब विचार समझ बन जायँ तब शब्दों का महत्त्व नहीं रहता। शब्दों की मर्यादा समझ में आये तभी जेन में थोड़ी समझ आती है। एक जेन-कथन में बताया गया है कि जिस घड़ी आप किसी बाबत के बारे में बोलना शुरू करते हैं उसी क्षण उस बाबत में चूक जाते हैं। हमारा असली चेहरा अर्थात् हमारा बुद्धत्व हम भूल गये। जेनपन्थी इस असली चेहरे की, स्वरूप की तलाश करना चाहते हैं और कहते हैं कि यह स्वरूप अचानक मिल जाय ऐसी घटना खोयी हुई स्मृति प्राप्त होने के बराबर है। यही है बोधि !

जेनपन्थ में दो विचारधाराएँ पनप सकी हैं। एक है सोटो और दूसरी रिझाई। सोटो विचारधारा ध्यान पर बल देती है जबकि रिन्जाई विचारधारा प्रज्ञा पर बल देती है। दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। प्रज्ञा की झमकार होती रहती है जबकि ध्यान सतत विकास की प्रक्रिया है। एक जेन गुरु ने कहा कि बोधि समयनिरपेक्ष है। दूसरे गुरु ने कहा कि जहाँ मन नहीं है, वहाँ समय नहीं है। समय का अवलम्बन हमारा मन है। मन झर जाता है तब बोधि की अवस्था प्राप्त होती है। यह प्रज्ञा की झमक अचानक होती है या विकास सातत्यपूर्ण होता है इस बाबत आइये, थोड़ा विचार कर लें। प्रश्न यह उठता है : 'अचानक किसे माना माना जाय', 'सातत्यपूर्ण माने क्या।' आदमी अवकाश में छलांग लगाये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और रिक्त स्थान पार करे तब 'अचानक छलाँग लगायी' ऐसा कह सकते हैं क्या ? हम संख्या में भी सातत्य का आरोपण करते हैं। तो भी १, २, ३ को अलग आँकड़ों के रूप में देखते हैं। यहाँ तनिक गहराई से विचार करें तो समझ में आयेगा कि एक और दो के बीच की तथाकथित छलाँग में अर्थात् अन्तराल में असंख्य अपूर्णांक समाये हैं और कहीं भी सातत्य का सेतु नहीं टूटा है। संक्षेप में प्रज्ञा की झमकार भले ही अचानक दिखे पर वास्तव में तो वह सातत्यपूर्ण प्रक्रिया की ही चरम सीमा होती है। प्रतिक्षण यह प्रक्रिया चलती रहती है। अवकाश में छलाँग लगाये तो इसमें भी सातत्य होता है। लोग खाली स्थान को अवकाश कहते हैं, यही सही है, पर अवकाश में कहीं भी कोना, खाँचा या टप्पा नहीं होता। इस दुनियाँ में अवकाश सच्चे माने में सर्वव्यापी है। तथाकथित खाली जगह अवकाश से भरी होती है।

एक दो और तीन भी सीधी रेखा के स्थान पर गोले में संयोजित हों तो ? डॉ० सुजुकी कहते हैं कि इस गोले की परिधि नहीं होती। शून्यता और अनन्तता एकाकार बन जाय ऐसी यह स्थिति होनी चाहिये। ऐसी स्थिति में भला मन स्थिर रह सकता है क्या ? जीवनधारा भले सतत बहती रहे परन्तु उसमें विद्यमान नित्य तत्त्व मिल जाय ऐसा हो सकता है क्या ? चीनी काव्य-पंक्तियों में यह बात जरा भिन्न-रूप से व्यक्त हुई है :

'आल स्ट्रीम्स फ्लो / द माउन्टेन्स आर नाट मूविंग
व्हाइट क्लाउड्स मूव आन / बट द ब्लू माउण्टेन्स मूव नाट'

[झरने सभी बहते रहते, पहाड़ खड़े एकदम अचल / शुभ्र बादल तिरते रहते, धूसर पर्वत किन्तु अविचल]

जेन माने हमारे अन्दर जो पड़ा है उससे सीधे सम्पर्क में आने की प्रक्रिया। तर्क के अत्याचार से बचना जरूरी है। जेन कोई दर्शन नहीं है, वह तो व्यक्तिगत अनुभूति और अंन्तःस्फुरणा का मार्ग है। पश्चिम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के दर्शन में तर्क और पृथक्करण का महत्त्व है, जबकि पूर्व का दर्शन अखिलता, एकीकरण और समन्वय (सिंथेसिस) पर बल देता है। दर्शन प्राप्त करने के बाद तर्क झर जाता है। एक जेन साधु की अनुभूति निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त हुई है :

मैं जब पुल पर से गुजरता हूँ

तब

पानी नहीं बहता बल्कि पुल बहता है !

एक जेन गुरु से किसी ने पूछा, "सत्य-प्राप्ति के लिए आप मंथन करते हैं क्या ?" गुरु ने कहा—हाँ। तत्काल ही दूसरा प्रश्न हुआ, "किस प्रकार मंथन करते हैं ?" गुरु ने कहा, "भूख लगती है तब खाता हूँ और नींद आती है तब ऊँघ जाता हूँ।" प्रश्न पूछनेवाला चकपकाया। उसने कहा, "ऐसा तो सभी करते हैं।" गुरु ने कहा, "दूसरे लोग खाते समय केवल खाते नहीं, विचार करते हैं। सोते समय भी उनका मन दौड़ता रहता है। मैं तो बस सो ही जाता हूँ। इतना अन्तर मेरे और दूसरों के बीच है।"

श्वेत बादल की यात्रा स्वैर, सहज, निर्भार, अनायास, अनाकुल और इस कारण आनन्दमय होती है। वह कभी भी एक जैसी या दिशा-बद्ध नहीं होती। विचारमुक्त होने के लिए मंथन करना यह भी विचार ही कहा जायगा। यहाँ ताओवाद जेन विचारधारा के एकदम निकट आ गया प्रतीत होता है। बाहर की दुनिया झरती जाय और अन्दर खुलासा होता जाय यह जेन-विचारधारा का सारतत्त्व है। जीवन की विविध क्रियाओं के साथ एकरूप होकर अन्तःस्फुरणा के सहारे जीवन-धारा में बहते रहकर ध्यान-युक्त होने में यह विद्यमान है।

आइये, दो मोण्डो द्वारा अपनी बात पूरी करें :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोण्डो–१

श्रमण ने बोधिधर्म से कहा, "मेरे मन को शान्ति नहीं है, कृपा करके मेरे मन को शान्त करें।" बोधिधर्म ने उत्तर दिया, "अपना मन मेरे पास ले आओ तब मैं उसे शान्त करूँगा।" श्रमण ने कहा, "पर जब मैं अपने मन को ढूँढता हूँ, तब वह मुझे नहीं मिलता।" बोधिधर्म ने तत्काल ही कहा, "बस, तब तो मैंने तेरे मन को शान्त कर दिया।"

[नोट : मन नहीं मिलता ऐसा कहनेवाला श्रमण शान्त ही हो सकता है। मन न हो वहाँ अशान्ति टिक सकती है क्या ? मन 'अमन' हो जाय तब शान्ति अपने-आप अवतरित होती है।]

मोण्डो–२

श्रमण ने जोशु से कहा, "मैं अभी ही विहार में दाखिल हुआ हूँ, कृपा करके मुझे कुछ सिखायें।" जोशु ने पूछा, "तूने लपसी खायी ?" श्रमण ने कहा, "हाँ मैंने लपसी खायी है।" जोशु ने कहा, "तो पहले तू बर्तन माँज डाल।"

[नोट : मैं तुझे कुछ सिखाऊँ उससे पहले तू अपने मनरूपी बर्तन को साफ कर डाल, खाली कर डाल, ऐसा कहने का गुरु का अभिप्राय है। भरे हुए या गन्दे बर्तन में कुछ भी भरना ठीक नहीं है।]

जेन साधु सयानेपन की खान जैसे होते हैं। बहुत ही कम शब्दों में सत्य प्रकट करने की जेन-परम्परा में बौद्धधर्म का नवनीत प्रकट होता दिखता है। जेन-कथाओं का लाघव और उनमें प्रयुक्त एक-एक शब्द के गहरे सूचितार्थ पकड़ने पड़ते हैं। जेन-साधना का सम्बन्ध डुबकी के साथ है, चहबच्चे के साथ नहीं।

चीन के तेंग वंश में झेन्गेझे नामक एक जेन साधु हो गये हैं। अपने शिष्यों को उन्होंने उपदेशरूप में जो कुछ कहा उसका सार इस प्रकार है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

—दुनिया में जीना पर दुनियादारी की धूल न चिपके इस प्रकार जीना, यही सच्चा मार्ग है।

—किसीको अच्छा काम करते देखो तो उसके दृष्टान्त का अनुसरण करो। कहीं खराब काम का दृष्टान्त मिले तो उसका अनुसरण टालो।

—अन्धेरे में एकदम अकेले कमरे में बैठे हो तब ऐसे बैठो मानो सामने कोई उत्तम मेहमान बैठा हो। प्रेम प्रदर्शित करो पर आपके अपने स्वभाव में हो उससे अधिक प्रेम न दिखाओ।

—गरीबी आपका खजाना है। सुखद जीवन के लिए उसका सौदा न करो।

—कोई आदमी मूर्ख जैसा दिखे पर वह मूर्ख न भी हो। शायद वह अपने सयानेपन की चौकसी करने के लिए मंथन कर रहा हो, ऐसा भी संभव है।

—सद्गुण स्वयं अनुशासन से प्रगट होते हैं। वे वर्षा या बरफ की भाँति आकाश से बरसते नहीं।

—नम्रता सभी सद्गुणों का आधार है। आप स्वयं अपनी जात व्यक्त करें उसके बदले पड़ोसी ही उसे ढूंढ़ निकालें और समझें, ऐसा काम करें।

—उत्तम हृदय का आदमी कभी अपनी जात को आगे नहीं रखता। उसके शब्द तो अनमोल हीरे जैसे होते हैं, बड़े भाग्य से प्रदर्शित होते और भारी कीमती होते हैं।

—सच्चे विद्यार्थी के लिए तो प्रत्येक दिन भाग्य का दिन है। समय बीतता जाता है पर वह वापस नहीं आता। मान-सम्मान या शरम उसे डिगा नहीं सकते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

—स्वयं की आलोचना करें, दूसरों की नहीं। सच्चा क्या है, झूठा क्या है इसकी चखचख में न पड़ें।

—कितनी ही बातें सच्ची होने के बावजूद अनेक पीढ़ियों तक झूठी मानी गयीं। नैतिकता का मूल्य सदियों बाद भी समझा जा सकता है, अस्तु, तात्कालिक प्रशंसा या कद्र की अपेक्षा न रखें।

—ध्येय प्राप्ति के लिए जिएँ और परिणाम सृष्टि के 'महान नियम' पर छोड़ दें। प्रत्येक दिन शान्त, ध्यानमग्न चिन्तन में व्यतीत करें।

कभी-कभी विचार आता है कि आदमी की आन्तरिक समृद्धि कितनी विशाल हो, जब वह गरीबी को 'खजाना' कह सके। ऐसी सच्ची अमीरी जिसके पास हो वह आदमी कह सकता है कि दुनियादारी की धूल से निर्लिप्त रहकर जिये। दुनियादारी की धमाचौकड़ी के लिए कवि इलियट ने भी 'धूल' शब्द अपनी प्रख्यात पंक्तियों में प्रयुक्त किया है। बात-बात में कभी-कभी संसारी लोग भी कहते हैं 'इसमें मुझे क्या मिलेगा ? धूल और रोड़े ?'

जेन साधुओं का आन्तर-वैभव जेन कथाओं में व्यक्त होता है। सामनेवाले को तुरन्त खबर न हो ऐसे कभी-कभी एकाध शब्द में या वाक्य में महान सत्य प्रगट हो जाता है। एक मालदार आदमी ने सेन्गाई नामक जेन साधु से अपने कुटुम्ब की सुख सम्पन्नता के लिए कुछ लिख देने को कहा जिससे पीढ़ी दर पीढ़ी उनके वंशज उसे पढ़ सकें। सेन्गाई ने कागज के एक टुकड़े पर लिखा 'पिता मरते हैं, पुत्र मरते हैं, पौत्र मरते हैं' यह पढ़कर उस मालदार आदमी को गुस्सा आया। उसने साधु से कहा 'मैंने तो आपको अपने कुटुम्ब की सुख समृद्धि के लिए कुछ लि ने को कहा था। आप इस तरह का मजाक क्यों करते हैं ?' सेन्गाई ने गंभीरता पूर्वक कहा, "मैंने कोई मजाक नहीं किया है। यदि तू मरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उससे पहले तेरा पुत्र मरे तो तुझे बहुत ही दुख होगा ! यदि तेरा पौत्र तेरे पुत्र के मरने से पहले मर जाय तो तुम दोनों एकदम टूट जाओगे। यदि तुम्हारे कुटुम्ब में प्रत्येक पीढ़ी में मैंने दिखाया है उस क्रम में ही मृत्यु हो तो जीवन का सहज क्रम माना जायगा। इसी को मैं सच्ची समृद्धि कहता हूँ।"

झटका देकर साधु ने समृद्धि के साथ मृत्यु की वास्तविकता जोड़ दी। चीन में वर्षों पूर्व सयाने लोगों ने पहेलियाँ रची थीं। जिन्हें 'कोअन' कहते हैं। साधक को शब्दों के मायाजाल में से छुड़ाने के लिए 'कोअन' की रचना हुई। इसमें पहेली स्वयं ही उत्तर भी होती है। और सच्चा उत्तर मिलते ही जेन नष्ट होता है। इसीलिए इसमें 'गेटलेस गेट' का अर्थात् द्वार-विहीन द्वार की बड़ी महिमा है। मुमोन तो कहता है कि जेन की समझ देना चन्द्रमा को लकड़ी से खोदने के बराबर है।

बात कुछ ऐसी है। जो आदमी सीधा ध्यान में डूब जाता है उसे कोई और मुसीबत आड़े नहीं आती। मुमोन कहता है कि जो आदमी ध्यानस्थ होने के लिए एक क्षण की भी खींचतान अनुभव करता है वह आदमी गाड़ी चूक जाने वाला है। कोई आदमी घुड़सवार गुजरे इसकी राह देखता दीवार के छोटे बारजे के पीछे बैठा रहे और पलक झपे तब तक तो घुड़सवार निकल जाय और देखनेवाला चूक जाय, ऐसा ही आध्यात्म मार्ग में खींचातानी अनुभव करनेवाले के साथ होता है। निम्नांकित काव्य पंक्तिओं में इस बात का इशारा थोड़ा अलग ढंग से हुआ है :—

यह तो मारग ऐसा
जहाँ नहीं दरवाजा कहीं भी
इसमें दूसरे मारग मिलें हजारों !
जो भी प्रविष्ट हो इसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह तो द्वारविहीन द्वार !
वह तो भाई घूमे मुक्त बनकर
स्वर्ग और पृथ्वी के बीच !

भारत, चीन और जापान को जोड़नेवाली कड़ी अर्थात् भगवान बुद्ध द्वारा प्रबोधित ध्यान। हरि के मार्ग में फिर द्वार कैसे ? जो मूलतः सर्व-देशीय है उस तक पहुँचने के लिए दरवाजा किस काम का ?

जेन विचारधारा का सारांश मैंने अपने ढंग से कुछ इस प्रकार निकाला है—तैरना सीखने वाले शुरू में हाथ बहुत हिलाते हैं और कितनी ही उठापटक करें तो भी बहुत दूरी काट नहीं पाते। जैसे-जैसे तैरने की कला आती जाती है और पानी से परिचय बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उनकी उठापटक घटती है और हाथ-पैर के हिलन चलन में समय का तत्त्व प्रगट होता है। अभ्यास बढ़ता है तब एक ऐसी अवस्था आती है जब पानी की सतह पर चित्त लेटे रहकर वे प्रवाह के साथ हाथ-पैर हिलाये बिना ही बहते रहते हैं। जीवन के अस्खलित प्रवाह में पूरी स्वस्थता में जीवनमय बनकर चेतना का मौन मुखर बनता है। फिर आनन्द के सिवा और क्या बचता है। जेन कोई शब्दों में बाँधने जैसा विषय नहीं है। उसका छोर तो वहीं होता है जहाँ अस्तित्व का छोर होता है। अस्तु अब शब्दों को भूलकर ऊँघ जाने की चेष्टा करें। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट २

जेन कथाएँ

१. अच्छा ऐसा !

एक जेन गुरु हो गये हैं। उनका नाम था हकुइन। पड़ोसी उनके पवित्र जीवन से प्रभावित थे। उनके पास एक कन्या रहती थी। उसके माँ-बाप गल्ले की दुकान चलाते थे। एक दिन माँ-बाप को पता चला कि उनकी कन्या गर्भवती है।

माँ-बाप के क्रोध का पार न था। उन्होंने लड़की से पुरुष का नाम बताने को बहुत कुछ कहा पर लड़की ने नाम न बताया। अन्त में बहुत दबाव देने पर लड़की ने हकुइन का नाम लिया। बस हो गया कबाड़ा। मां-बाप तो लाल-पीले हो गये और पहुँचे हकुइन के घर। हकुइन जवाब में कुछ न बोले, केवल इतना ही कहा, 'अच्छा ऐसा !'

बालक पैदा हुआ तब उसे हकुइन के यहाँ रख दिया गया। हकुइन ने बालक की पूरी देखभाल की। पड़ोसियों के यहाँ से दूध लाकर बालक को पिलाने लगे और बालक की अन्य जरूरतें पूरी करने लगे।

एकाध्र वर्ष बीता तब उस माँ बनी लड़की से रहा नहीं गया। उसने माँ-बाप से सच्ची बात कह दी। बालक का असली पिता तो मच्छी बाजार में काम करनेवाला एक युवक था। माँ-बाप हकुइन के यहाँ गये और उससे माफी माँगने लगे। अन्त में उन्होंने बालक को वापस ले जाने के लिए विनती की।

हकुइन तैयार ही थे। बालक को वापस सौंपते समय उन्होंने केवल इतना ही कहा "अच्छा ऐसा !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. चाँद की चोरी नहीं हो सकती

रयोकन नाम के एक जेन गुरु हो गये हैं। पर्वत की तलहटी में एक झोपड़ी में रहकर वे साधना करते और सादगी से रहते थे।

एक रात उनके यहाँ चोर आया पर झोपड़ी में चुराकर ले जाने लायक उसे कुछ भी न मिला। रयोकन ने उसे जाने से रोका और कहा, 'तू दूर से मुझसे मिलने आया इस कारण तुझे खाली हाथ जाने देना ठीक नहीं कहा जायगा, तूं मेरे कपड़े भेट के रूप में ले जा।'

चोर को आश्चर्य हुआ पर वह कपड़े लेकर रवाना हो गया। रयोकन तो नग्न अवस्था में बैठे-बैठे मौज से चाँद को निरखते रहे। फिर वे धीरे से बड़बड़ाये "बेचारा आदमी! मेरा बस चलता तो मैं उसे यह सुन्दर चाँद दे देता।"

३. पुछल्ला

कीचु नामक एक जेन गुरु हुए हैं। जापान के मीजी युग में वे क्योतो के एक मन्दिर में रहते थे। एक दिन क्योतो के गवर्नर पहली बार उनसे मिलने आये। गवर्नर का विजिटिंग कार्ड लेकर नौकर कीचु के पास गया। कार्ड पर लिखा था, "किरागाकि, क्योतो का गवर्नर"।

"मुझे ऐसे आदमी से कुछ लेना-देना नहीं है। उससे कहो कि यहाँ से चला जाय।" कीचु ने नौकर को सूचित किया। नौकर कार्ड लेकर बाहर आया और गवर्नर के समक्ष हमदर्दी व्यक्त करके खड़ा रहा।

"यह मेरी भूल थी" गवर्नर ने कहा और कार्ड पर से "क्योतो का गवर्नर" शब्द पेंसिल से छेककर नौकर को फिर से कार्ड गुरु को दिखाने को कहा। नौकर कार्ड लेकर गया।

"अरे यह तो किरागाकी है। मैं तो इससे मिलना चाहता हूं।" कीचु ने कार्ड पढ़कर नौकर से कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. सच्चाई की खनक

बान्काइ नामक एक जेन गुरु हुए हैं। वे मरे तब उनके मन्दिर के के पास रहते एक अन्धे व्यक्ति ने अपने मित्र से कहा "मैं अन्धा हूँ इससे मैं किसी का चेहरा नहीं देख सकता। मैं आदमी का चरित्र उसकी आवाज पर से आँकता हूँ। सामान्यतः जब मैं दूसरे किसी आदमी को विजय की या सफलता की बधाई देते समय कहे शब्द सुनता हूँ तो मुझे उन शब्दों में निहित ईर्ष्या की छिपी आवाज भी सुनाई देती है। इसी प्रकार जब मैं किसी आदमी को दूसरे को आश्वासन देते समय वह जो शब्द कहता है सुनता हूँ, तब ऐसा करते हुए मिल रहे आनन्द की छिपी आवाज भी सुनाई पड़ती है।"

"पर बान्काइ की बात अलग है। उनकी आवाज में हमेशा मुझे सच्चाई की खनक सुन पड़ी है। वह जब आनन्द व्यक्त करते तब मुझे आनन्द के सिवा और कुछ भी सुनाई न देता। इसी प्रकार जब वे दुख व्यक्त करते तब मुझे दुख के सिवा कोई भी और आवाज नहीं सुन पड़ती थी।"

५. चाय का कप

विश्वविद्यालय का एक प्रोफेसर जेन गुरु नान-इन के पास गया और जेन की बाबत कुछ कहने की विनती की।

गुरु ने चाय बनायी और कप में उड़ेलने लगे। कप भर गया तो भी गुरु चाय उडेलते ही रहे। प्रोफेसर से नहीं रहा गया, उसने कहा "कप भर गया है। अब उसमें अधिक चाय नहीं समा सकती।"

"इसी कप की भाँति तेरा मन भी अभिप्रायों, अटकलों और धारणाओं से भरा है। तू कप को खाली न कर डाले तब तक मैं जेन माने क्या, यह किस प्रकार समझाऊँ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. रेत में मिल गया मोती

गुडो नामक एक जेन साधु हो गये हैं। वे राजा के गुरु थे तो भी परिव्राजक के रूप में अकेले निकल जाने में मजा आता था। एक बार वे इडो जाने निकले और रास्ते में टाकेनाका नामक गाँव में ठहर गये। साँझ होने आयी थी और वर्षा खूब हुई थी इससे गुडो पूर्ण रूप से भींज गये थे। उनकी जूतियाँ घास की बनी थीं, वे भी गीली होकर खतम हो गयीं। गाँव के पास के खेत में झोपड़ी की खिड़की पर पाँच छः जूतियाँ रक्खी थीं। गुडो ने उन्हें खरीदने का विचार किया।

जिस स्त्री ने उन्हें जूतियाँ दीं उसने देखा कि साधु बिल्कुल भींज गये हैं। उसने उन्हें अपने यहाँ रात रुक जाने की विनती की। गुडो ने आभार मानकर उसकी माँग स्वीकार की। घर में पूजा की कोठरी थी वहाँ उन्होंने शांति से बैठकर मन्त्र पाठ शुरू किया। उस स्त्री ने अपने बच्चों तथा माँ के साथ साधु का परिचय कराया। समूचा कुटुम्ब निराश प्रतीत होता था अस्तु साधु ने कारण पूछा। स्त्री ने जवाब दिया 'मेरा पति जुआड़ी है। वह जीत जाता है तो दारू पीता है और पैसे उड़ा देता है और हार जाता है तो उधार लगाता है। कभी कभी दारू पीकर वह घर आने के बदले चाहे जहाँ पड़ा रहता है। मैं क्या करूँ?'

साधु ने शांतिपूर्वक कहा 'ये थोड़े से पैसे रख ले और मेरे लिए एकाध गैलन के लगभग बढ़िया दारू ला दे। साथ ही थोड़ा अच्छा भोजन भी लेती आना। फिर तू सो जाना और मैं ध्यान करता रहूँगा।'

अर्धरात्रि में पति घर आया। पत्नी को जगाने के लिए उसने आवाज लगायी और खाना देने को कहा। साधु ने उससे कहा 'मैं वर्षा में फँस गया था इससे यहाँ तेरी पत्नी के आग्रहवश रुक गया हूँ। बदले में मैंने दारू और मछली मँगा रक्खी है। तू भी उसे ले सकता है।'

पति प्रसन्न हुआ। उसने दारू पी डाली और जमीन पर लेट गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधु उसके पास बैठकर ध्यान करता रहा। सुबह जब गृहस्वामी जागा तब रात में क्या हुआ था यह भूल गया। ध्यानमग्न साधु से उसने पूछा 'आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ?'

'मैं गुडो हूँ और क्योतो से आ रहा हूँ। इडो जा रहा हूँ।' साधु ने बताया। वह आदमी लज्जित हुआ। राजा के गुरु से उसने माफी माँगी।

साधु हँसे, हँसके उन्होंने कहा 'जीवन बहुत ही अल्प है। तू यदि दारू पीने में और जुआ खेलने में ही समय बरबाद करेगा तो जीवन में क्या प्राप्त करेगा। और तेरा परिवार भी दुखी रहे, वह ऊपर से।'

उस आदमी को आँख खुल गयी। वह मानो स्वप्न से जाग गया। उसने कहा 'मैं आपके उपदेश का वदला कैसे चुका सकता हूँ। चलिये मैं थोड़ी दूर तक आपको पहुँचा आऊँ, आपका सामान भी मैं उठा लेता हूँ।'

दोनों चलने लगे। तीन मील के लगभग गये तो साधु ने उससे कहा 'अब वापस लौट जा'। उसने साधु से वड़ी आजिजीपूर्वक कहा 'अभी केवल पाँच मोल तक साथ आने दें।' दोनों आगे बढ़े।

पाँच मील के वाद साधु ने कहा 'अब वापस लौट जा'। 'अब केवल दस मील तक' उसने कहा। दस मील बाद साधु ने फिर से उस आदमी को वापस लौटने की विनती की। उस आदमी ने शांति से जवाब दिया 'अब मैं सारी जिन्दगी आपके पीछे-पीछे चलने वाला हूँ।'

आज के जेन साधु जापान की एक परम्परा के साथ जुड़े हैं। उनके गुरु तो गुडो के वारिस कहलाते हैं। इन गुरु का नाम है मुन्नान। मुन्नान उस आदमी का नाम है जो कभी वापस लौटा ही नहीं।

७. प्रेम गुपचुप हो सकता है

एक जेन साधु के आश्रम में बीस जेन साधक और एक जेन साध्वी रहते थे और ध्यान करते थे। साध्वी का नाम था इशुन इशुन। अत्यंत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपवती थी। उसने सिर मुड़ाया था और सादा पहनावा अपनाया था तो भी उसका रूप ढका नहीं रहता था। कितने ही साधक मन ही मन उससे प्रेम करने लगे थे। उनमें से एक व्यक्ति ने इशुन को पत्र लिखा और उससे एकान्त में मिलने का आग्रह किया।

इशुन ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन गुरु ने जब प्रवचन पूरा किया तब इशुन उठ खड़ी हुई। पत्र लिखने वाले उस साधक को संबोधित करते हुए कहा 'यदि तू मुझे सचमुच चाहता है तो अभी यहाँ आ और मुझे आलिंगन में ले ले।'

८. एक हाथ से ताली बजती है !

केनिन मन्दिर में एक जेन गुरु रहते थे जिनका नाम था 'मोकुराइ' अर्थात् 'बिजली की ठंडी कड़क'। उनके पास लगभग बारह वर्ष का बालक टोयो भी रहता था। नित्य वयस्क साधक गुरु के पास जाते और मार्गदर्शन प्राप्त करते। टोयो को भी इच्छा हुई कि दूसरे साधक जो करते हैं वह स्वयं भी करे। पर मोकुराइ ने उससे कहा 'तेरे लिये अभी देर है। तू छोटा है।'

पर बालक अपनी माँग पर अड़ा रहा, अस्तु गुरु ने एक शर्त रखी 'दो हाथ से ताली बजती है पर तू मुझे एक हाथ से ताली की आवाज हो, वह सुना।' टोयो नमन करके वापस लौटा और अपने कमरे में जाकर इस गूढ़ समस्या पर विचार करने लगा।

एक दिन उसने एक गीशाका संगीत सुना। वह गया गुरु के पास और वह संगीत सुनाने लगा। गुरु ने कहा 'यह कोई एक हाथ की ताली की आवाज नहीं है। प्रयत्न करता रह।'

टोयो ने अपना बसेरा बदला और एकान्त स्थान पर रहने गया। ध्यान करता रहा और विचार करता रहा कि एक हाथ की ताली की आवाज कैसी होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहीं पानी टपक रहा था। उसे लगा कि यह आवाज एक हाथ से ताली बजे उसकी आवाज कही जा सकती है। पागल बनकर वह गुरु के पास पहुँचा पर गुरु ने कहा 'यह तो पानी टपकने की आवाज है। अभी प्रयास करता रह।'

फिर तो टोयो ध्यान करता रहा, एक बार उसने हवा की आवाज सुनी। पर गुरु ने उसे भी अस्वीकार कर दिया। दूसरी बार उल्लू की आवाज सुनी पर गुरु ने वह आवाज भी स्वीकार नहीं की। इस प्रकार टोयो दस बार गुरु के पास गया और निराश हो वापस लौटा। सारा साल बीत गया पर कुछ भी हाथ न लगा।

अन्त में एक दिन उसे ध्यान में गहरी अनुभूति हुई। सभी आवाजें पीछे रह गयीं। फिर वह गुरु के पास गया और बोला 'कोई आवाज अब सुनायी नहीं देती। अब तो आवाज बिना की आवाज (द साउण्ड-लेस साउण्ड) रह गयी है।'

टोयो को एक हाथ से ताली बजने की आवाज प्राप्त हो चुकी थी।

९. चोर बना चेला

एक रात सिचिरि कोजुन मन्त्रपाठ कर रहे थे। इतने में एक चोर खुली तलवार लिये घुस आया और पैसा न देने पर जान लेने की धमकी दी।

'मुझे व्यवधान न पहुँचा। उस खाने में पैसे हैं।' इतना कहकर सिचिरि फिर मन्त्रपाठ करने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने चोर से कहा 'सब पैसे न ले जाना, थोड़े छोड़ जाना। मुझे कल किसी को चुकाने हैं।' चोर तो अधिकतर पैसे लेकर चलने लगा। वह जा रहा था तो सिचिरि ने उससे कहा 'जिस आदमी से भेंट स्वीकार की उसका आभार तो मानना चाहिए न।' चोर आभार मानकर चलता बना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ दिनों बाद चोर पकड़ा गया और उसने अनेक अन्य गुनाहों के साथ सिचिरि के यहाँ चोरी करने की बात भी कबूल की। जब सिचिरि को गवाह के रूप में बुलाया गया तब उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा 'जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है वहाँ तक यह आदमी चोर नहीं है। मैंने इसे पैसे दिये थे और उसने मेरा आभार माना था।'

जेल से छूटने के बाद वह चोर सिचिरि का चेला बन गया।

१०. शांत मंदिर

शोइची नामक एक जेन गुरु हुए हैं जो काने थे। उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था। ताकुकु के मन्दिर में रहकर वे उपदेश देते थे।

रात-दिन वह मन्दिर बिलकुल शांत रहता था। कभी भी कोई आवाज नहीं होती थी। मन्त्रपाठ भी गुरु ने बन्द कराया था। मन्त्र ध्यान किया जाता था।

जब गुरु का अवसान हुआ तब एक बूढ़ी पड़ोसन के कान में मन्दिर के घण्टे की आवाजपड़ी और मन्त्रपाठ भी सुनाई दिया।

तब बुढ़िया को पता चला कि शोइची का अवसान हो गया है।

११. पुस्तककी 'तीसरी' आवृत्ति

तेत्सुगन नामक एक साधु हुए हैं। उन्होंने अनेक जेन सूत्र छपवा कर पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का विचार किया। उस समय ये सूत्र केवल चीनी भाषा में ही उपलब्ध थे। पुस्तक लकड़ी के साँचे से छपनी थी और सात हजार नकलें निकालनी थी। कार्य टेढ़ा था।

इस हेतु तेत्सुगन यात्रा करते रहे और दान प्राप्त करते रहे। अनेक लोग उन्हें सोने के सौ सिक्के देते पर अधिकतर लोग एकदम छोटी रकम दान में देते। तेत्सुगन सबका एक जैसा आभार मानते। दस वर्ष बाद पैसे इकट्ठा हो गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस साल हुआ ये कि उजी नदीं में बाढ़ आयी और फिर अकाल पड़ा। तेत्सुगन वह रकम लेकर चले और भूखों को भोजन कराने में लग गये। रकम खर्च हो गयी।

पर उन्होंने फिर चन्दा जमा करना शुरू किया। पैसे तो मिल गये पर उस वर्ष महामारी का तांडव हो गया और इकट्ठा की हुई रकम पुनः खर्च हो गयी। फिर तो तेत्सुगन ने तीसरी बार चन्दा लेना शुरू किया और रकम इकट्ठा हुई। बीस वर्ष बीत गये तब तेत्सुगन की इच्छा पूरी हुई और पुस्तक तैयार हुई। वह जिन साँचो से छपी थी वे लकड़ी के साँचे आज भी क्योतो के ओवाकु मठ में दर्शनार्थ सुरक्षित रक्खे हैं।

जापान के लोग अपने बच्चों को कहानी सुनाते हुए कहते हैं "तेत्सुगन के सूत्रों की तीन आवृत्तियाँ प्रकाशित हुईं, पर पहली दो आँख से दिखाई न पड़े ऐसी आवृत्तियाँ थीं, तीसरी देखी जा सके ऐसी आवृत्ति से टक्कर लें ऐसी सुन्दर थीं।"

१२. बोले बिना का उपदेश

रयोकेन नामक एक जेन साधु हुए हैं। एक दिन उन्हें पता चला कि उनका भतीजा स्वजनों की सुनता नहीं और वेश्या के पीछे पैसा बरबाद कर रहा है। रयोकेन के जाने के बाद परिवार की जिम्मेदारी यही भतीजा संभालता था। इससे स्वजनों ने रयोकेन से इस बारे में कुछ करने का आग्रह किया।

रयोकेन ने तो अनेक वर्षों से भतीजे को देखा भी नहीं था। और उससे मिलने जाने के लिए मीलों की दूरी तय करनी पड़ी। भतीजा तो वष बादों काका से मिलकर बहुत खुश हुआ। और रातभर रुक जाने के लिए उसने रयोकेन से आग्रह किया।

सारी रात रयोकेन ने ध्यान में व्यतीत की। दूसरे दिन सबेरे जाते समय रयोकेन ने भतीजे से कहा "उमर हुई इस कारण मेरे हाथ काँपते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। मेरे घास के सैंडिल के फीते क्या तू बाँध नहीं देगा ?" भतीजे ने सहर्ष फीते बाँध दिये।

"आभार, दिन बीतते हैं त्यों-त्यों आदमी बूढ़ा और दुर्बल होता जाता है। अपने शरीर का ध्यान रखना।" इतना कहकर रयोकेन चलने लगे। वेश्या के बारे में या स्वजनों की फरियाद की बाबत उन्होंने एक शब्द भी भतीजे से नहीं कहा।

पर उस दिन सुबह से भतीजे के सभी उपद्रव जो बन्द हुए तो सदा के लिए बन्द हो गये।

१३. बौड़म राजा

दो जेन साधु थे। एक का नाम था डेइगु और दूसरे का गुडो। एक बार दोनों को राजा का निमन्त्रण मिला।

राजा के पास पहुँचे तो गुडो ने राजा से कहा "आप तो स्वभाव से ही सयाने हैं और जेन सीखने की शक्तियाँ जन्म से ही आपके अन्दर विद्यमान हैं।" यह सुनकर डेइगु बोल उठे "ऐसी वाहियात बात मत कहें। इस बौड़म राजा को आप मस्का क्यों लगाते हैं? ये राजा भले हो पर जेन माने क्या इसका यह क-ख-ग भी नहीं जानता।"

फिर तो गुडो के लिए मंदिर बनवाने के बदले उस राजा ने डेइगु के लिये मंदिर बनवाया और उसके पास रहकर जेन की साधना की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डा० गुणवंत शाह की अन्य कृतियाँ

कहीं दूर जब दिन ढले (ललित निबन्ध)

गद्य में काव्य, पंक्ति-पंक्ति में सूत्र, चुभता हुआ व्यंग्य, सराबोर कर देने वाला रस प्राप्त करना हो तो इन ललिताओं को पढ़ें।

करुणामूर्ति बुद्ध

जीव मात्र के प्रति करुणा पर आधारित भगवान बुद्ध के जीवन, धर्म और दर्शन की मर्म कथा।

सरदार माने सरदार

सरदार वल्लभ भाई पटेल सरलता, समर्पण, त्याग, दृढ़ निश्चय और ओज की प्रतिमूर्ति थे। लेखक ने सरदार पटेल के व्यक्तित्व की उज्ज्वल रेखाओं को इस छोटी सी पुस्तक में चित्रित किया है।

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi